क्षयाधिमासविमर्श

लेखक :-

प्रियव्रत - शक्तिधर

प्रकाशक :-

मै० श्रीमार्त्तण्ड ज्योतिष कार्यालय

पो. कुराली (रोपड़) पंजाब

क्षयाधिमासविमर्श

(क्षयमास-संसर्पसंबन्धी अनैकमत्य का आधिकारिक विश्लेषण)

लेखक :-

प्रियव्रत शर्मा M.A., सिद्धान्तज्योतिषाचार्य, साहित्याचार्य, सम्मानित सदस्य-व्रतपर्वनिर्णायिका समिति, Positional Astronomy Centre, Calcutta.

डॉ. शक्तिधर शर्मा Ph.D. (Lawrence, U.S A.), F.R.A.S. (London), M.Sc. (Physics), सिद्धान्तज्योतिषाचार्य, परामर्शदाता – Positional Astronomy Centre, Calcutta ; Associate Professor-Physics Deptt. Punjabi University, Patiala.

प्रकाशक :-

मै० श्रीमार्त्तण्ड ज्योतिष कार्यालय

पो. कुराली (रोपड़) पंजाब

प्रकाशक :—

मै. श्रीमार्त्तण्ड ज्योतिष कार्यालय

पो कुराली (रोपड़) पंजाब।

प्रबन्धसम्पादक :—

श्री इन्दुशेखर शर्मा शास्त्री, M.A.

श्रीमार्त्तण्ड ज्योतिष कार्यालय

पो. कुराली (रोपड़) पंजाब।

ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा सं. २०३६ वि.

मूल्य : पच्चीस रुपए

मुद्रक :—

कुमार मुद्रणालय

दी माल, सोलन (हि०प्र०)।

स म र्प ण म्

अनन्तश्रीविभूषितानां श्रीकाञ्चीकामकोटिपीठाधिपानां जगद्गुरूणां श्रीमच्चन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वतीमहाभागानां करकमलयोः सश्रद्धं साष्टाङ्गप्रणति समर्प्यत एष विमर्शः –

विनीताभ्याम्–
प्रियव्रत–शक्तिधराभ्याम्

— आमुखम् —

विसंक्रान्तिः चान्द्रो मासः अधिमासः षष्टितिथ्यात्मक-मासस्य पूर्वार्धमकर्मण्यः—इति बाहुल्येन प्राप्तप्रयोगा अधिमास-परिभाषा क्षयमासवर्षे विसंक्रान्तिमासयुग्मं वहति व्रतोत्स-वादितिथिषु वैमत्यस्य जननी। एकाब्दमध्यवर्त्तिनोः असंक्रान्त-योः एकमेव उपपत्त्या अधिमासं वदन्तं युक्तमपि विद्वांसं साधारणो लोकोऽपि प्रतितृतीयवर्षं पञ्चाङ्गेषु असंक्रान्तमेव अधिमासं पश्यन् अधिमासत्वे असंक्रान्तत्वं सद्धेतुम् भ्रान्त्या जानानः ज्योति-षिकश्चापि अबहुश्रुतः अज्ञमिव पश्यति, तदुक्तम् च अविचारितो-पन्यस्तमपि सहसा वदति।

चान्द्रमासेषु ऋतुव्यत्ययपरिहारायैव अधिमासस्य समुद्-भावना इति अधिमासोपपत्तिविदो विदुः। सौर-चान्द्रवर्षमाना-न्तरम् एकादशदिनात्मकम् आब्दिकं प्रतिसार्धवर्षद्वयासन्नावधौ संकलितं त्रिंशत्तिथ्यात्मकतया सौरमाससंख्याया एकमधिकं चान्द्र-मासं जनयति, अयमेवाधिको मासः चान्द्रः सौरमासेभ्योऽधिकत्वं गतः यथाव्युत्पत्ति ऋषिभिः आचार्यैश्च अधिकमास इति गृह्यते। सौरकालात् चान्द्रकालस्य आधिक्येन (कालाधिक्येन) एव एष प्रयुक्तः चान्द्रमासान् तदीयमूल-ऋतोः अपसाराद् रुणद्धि—इति विशदम्। अधिकस्यास्य विनिर्णयः संक्रान्तिराहित्येन बहुलतया सम्भवति—इति "असंक्रान्तिमासोऽधिमासः"—एवं प्रायिकं वचः आचार्यैः ऋषिभिश्च प्रयुक्तम् सामान्यो जनः अधिमासोपपत्ति-

ज्ञानवञ्चिताश्च पञ्चाङ्गकर्त्तारोऽपि तत् नित्यत्वेन गृह्णन्तः कालाधिक्याभावप्रयुक्तामपि कादाचित्कीमसंक्रान्तितां मासस्य अधिमासत्व-निमित्तं चिन्तयन्ति । परम् शास्त्राणि कालाधिक्याभावप्रयुक्तां ताम् अधिमासत्वाय अधिमासोपपत्त्यननुकूलतया नोररीकुर्वन्ति, इत्येव क्षयमासप्रवृत्तौ एकस्मिन्नेव वर्षे प्रवृत्तयोः असंक्रान्तयोः एकं परवृत्तिमेव अधिमासत्वेन ते दिदिशुः । एकस्मिन्नेव वर्षे सौरकालात् चान्द्रकालस्य एकमासतुल्या अतिरिक्तता निर्भरमनुपयुक्ता — इति एकाब्दान्तःपातिनोः असंक्रान्तयोः एकस्यैव चान्द्रमासेषु ऋतुविपर्ययस्य वारणे हेतुता, द्वयोस्तु न हि सा भवति ।

अव्यवहितपूर्वं क्षयात् स्थित एवाऽसंक्रान्तः अनधिमासः व्यवहितपूर्ववृत्तिस्तु सः नेति केषांचन अधिमासोपपत्ति-विरहितमतीनां मीमांसकानां मतिः । कालाधिक्यमेव हि अधिमासताया बीजम्, तच्च क्षयात् व्यवहितपूर्वाऽव्यवहितपूर्ववृत्त्योः तयोः द्वयोरेव समम् अनुपस्थितम् । व्यवहितपूर्वमसंक्रान्तमधिमासं नैकापि आर्षी अनार्षी वा कृतिः निर्दिशति —इत्यप्यत्र स्फुटं प्रदर्शितम् ।

क्षयं मासयुगलं प्रतिपादयन्ति वचांसि संसर्पस्य (क्षयपूर्ववर्त्तिनोऽसंक्रान्तमासस्य) अनधिमासतां न सहन्ते, इति तानि सावकाशानि आपादयितुं व्यवहितपूर्वाऽव्यवहितपूर्वभेदेन संसर्पस्य अधिमासत्वानधिमासत्वविनिश्चयः मीमांसकैः कृतो बहुदोषः इति सुविस्तरमत्र प्रादर्शयाम ।

ऋषीणामन्येषां च वचांसि सर्वाणि एकार्थपरकाण्येव, तेषु वैमत्यम् तदाभासमात्रम्, इति यया कया युक्त्या तेषामेकविषयतैव प्रतिपादिता तत्त्वमिति केषांचन मीमांसकानां

महती अप्रमा । वैमत्यं हि शास्त्रेषु प्राकृतिकम्, इतरथा एकस्मिन् शास्त्रे सति शास्त्रान्तराणि तद्विषयाणि न प्रवर्त्तेरन् । सुस्फुटं प्रतीयमानं वैमत्यं वचसां यथा-तथा अपास्य ऐकमत्यं बलादापादितं निर्णयिकतत्त्वान्तरानवबोधात् दोषान्तराणि समुत्पादयति—इति नैते मीमांसकाः पश्यन्ति इति विस्मयः । एकस्यैव वक्तुः वचःसु प्रविष्टो विरोधः सत्यं परिहार-प्रयासमपेक्षते । परं विभिन्नकर्त्तृकाणि वचांसि व्यक्तम् मिथो विरुद्धानि अपि याथातथ्येन परिहृत-विरोधानि एकार्थपरकतया व्यवस्थाप्यान्येव, कामं तेन दोषसंहतिरन्या उदियात् —कीदृशीयं मीमांसा ?

क्षयस्य मासयुग्मताविधिः कैश्चन मीमांसकैः मासयुग्मत्वविधायकानां केषांचन वचसां सावकाशत्वविधाने दृढं ग्रहिलैः संरक्ष्यमाणः अस्माकं पंचाङ्गे मासपक्षयोः पौर्वापर्यं विच्छिनत्ति, व्रत-पर्वणां परम्परीणं पौर्वापर्यं विकुरुते लोपं च तेषामुद्भावयति, एकत्रैव मासे संवत्सरद्वयं सहसैव आधत्ते, अधिमासोत्पत्तिसिद्धान्तमवमन्यते, तिथ्यर्धवाक्यप्रवर्त्तनया तिथ्यर्धं तिथिमापादयन् द्वादशांशान्तरात्मक-सूर्य-चन्द्रान्तररूपां तिथिपरिभाषामन्यथा कुरुते, सूर्यसिद्धान्ताद्यार्षग्रन्थमतं संसर्पस्याधिमासत्वप्रतिरोधि द्वेष्टि, श्राद्धेष्वपि कालान्तरे करकचतुर्थी-दीपावल्यादीनुत्सवान् घटयिष्यति—इत्येवमेष दोषसंघाताश्लिष्टः पंचाङ्गमस्माकं व्यवहारजटिलं विदधानः असमाधेयं काठिन्यं धार्मिकसमाजे प्रवर्त्तयते ।

क्षयमासस्य मासयुगलत्वापादना निरस्ता चेद् एते दोषा नास्माकं पंचाङ्गमास्कन्दन्ति । तदा तत्र एक एव मीमांसकानां कल्पनाप्रसूतः दोषः— मासयुगलत्व - विधायक - वचसां केषांचन निरवकाशता । मासयुगलत्व - विधायक - वचसामेतेषां सावकाशता महतीं दोषानीकिनीं समनन्तरपूर्वमेव निर्दिष्टां जनयति

इति एतेषां निरवकाशतारूप एष सदोषमीमांसनोद्भवः दोषः गुण एव तत्त्वतः।

अत्रैष सर्वोऽपि विषयः सविस्तरं सविशकलनम् समुपस्थापितः पूर्वपक्ष-सिद्धान्तौ सुविशदं व्यवच्छेत्स्यति — इति प्रतिजानीमहे।

श्रीमार्त्तण्डज्योतिषकार्यालयः
कुराली (रूपनगरम्) पंचनदः
(ज्येष्ठशुक्लपूर्णिमा, वि.सं २०३९)

—प्रियव्रतशर्मा

ध्यान दीजिए

अधिमासोपपत्तिसिद्धान्त के अनुसार दो अधिमासों का परस्पर अन्तर २८ मासों से कम नहीं हो सकता, यही कारण है कोई भी अधिमास अपने पूर्ववर्त्ती अधिमास से तीसरे वर्ष में आया करता है ।

जब कभी क्षयमास (दो संक्रान्तियों से युक्त मास) आता है तब एक ही वर्ष में ४-५ मासों के ही अन्तर पर दो संक्रान्तिहीन मास आ जाते हैं। इनमें से एक तो क्षय-मास से पहिले तीन मास के भीतर और दूसरा क्षयमास के बाद तीन मास के भीतर आया करता है। सर्व-साधारण व्यक्ति, यहां तक कि अनेक ज्योतिषी भी 'संक्रान्तिहीन मास अधिकमास होता है'–अधिक मास की इस परिभाषा के अनुसार इन दोनों संक्रान्तिहीन मासों को अधिकमास समझ बैठते हैं। ध्यान रहे— 'संक्रान्ति-रहित मास अधिमास होता है' —अधिकमास की यह सामान्य परिभाषा है। धर्मशास्त्रकारों का कहना है कि क्षयमास से पहिले और बाद में आने वाले संक्रान्ति-

हीन मासों में से दूसरा संक्रान्तिहीन मास ही अधिक-मास होता है, पहिले संक्रान्तिहीन मास को, जिसे उन्होंने 'संसर्प' नाम दिया है, अधिकमास नहीं माना, उसे उन्होंने मासिक व्रतपर्वादि के लिए शुद्ध माना है ।

जाबालि का वचन है—

एकस्मिन्नपि वर्षे चेद् द्वौ मासावधिमासकौ ।
पूर्वो मासः प्रशस्तः स्यादुत्तरस्त्वधिमासकः ॥

[अर्थात्– यदि एक ही वर्ष के भीतर दो अधिक मास आ पड़ें तो उनमें से पहिले को शुद्धमास और दूसरे का अधिमास समझना चाहिए ।]

शातातप कहते हैं—

एकत्र मासद्वितयं यदि स्याद्वर्षेऽधिकं तत्र परोऽधिमासः ।

[अर्थात्– यदि एक ही वर्ष में दो अधिमास आ जाएं तो उनमें से दूसरा (परवर्त्ती) ही अधिमास है ।]

इसी प्रकार निम्नांकित वाक्य भी स्पष्ट कह रहा है कि यदि एक ही वर्ष के भीतर दो मासों में अधिमास का लक्षण (संक्रान्तिहीनता) दिखाई पड़े तो वहां दूसरे संक्रान्तिहीन मास को ही अधिसास मानना चाहिए—

'एकस्मिन्नपि वर्षे यत्रेदं लक्ष्म दृश्यत उभयोः ।
तत्रोत्तरोऽधिमासः..............................॥

'स्मृतिमुक्ताफल'कार का वचन है—

'वर्षेऽप्येकस्मिन् यदि द्वौ मलमासौ पूर्वोऽसंक्रान्तोऽपि कर्मण्यः, परो मलमासः । ....असंक्रान्तत्वेन अधिकत्व-प्रसक्तियुक्तयोः मध्ये पूर्वस्य अधिमासत्वनिषेधात् ।'

[अर्थात्–एक ही वर्ष में यदि दो मलमास आ पड़ें तो उनमें से पहिला संक्रान्तिहीन होते हुए भी कर्मार्ह (शुद्ध) है । .... संक्रान्तिहीन होने के कारण यद्यपि इन दोनों में अधिमास का लक्षण लागू होता है लेकिन फिर भी इनमें से पहिले संक्रान्तिहीन मास को अधिमास नहीं माना जाता है ।]

'जयसिंह कल्पद्रुम'कार भी यही कहते हैं—

'संसर्पोऽसंक्रान्तोऽपि न मलमासः किन्तु शुद्धतुल्यः, उत्तर एवासंक्रान्तः मलमासः ।'

[अर्थात्– संसर्प मास (क्षयमास से पहिले आने वाला संक्रान्तिहीन मास) यद्यपि संक्रान्तिहीन होता है फिर भी उसे मलमास (अधिकमास) नहीं माना जाता,

केवल क्षयमास के बाद आने वाले संक्रान्तिहीन मास को ही मलमास माना गया है।]

'पुरुषार्थचिन्तामणि'कार ने स्पष्ट लिखा है—

'रविणा लंघितो मासः अनर्हः सर्वकर्मसु' — इत्यादि वचनानि क्षयमासात् प्राचीने संसर्पाख्ये असंक्रान्ते मासे न प्रवर्त्तन्ते, किन्तु उत्तराऽसंक्रातमास एव प्रवर्त्तन्ते।'

[अर्थात्– 'रविलंघित मास (संक्रातिहीन मास) सभी कार्यों के लिए वर्जित है' —इस प्रकार के जितने भी वचन हैं वे क्षयमास से पहिले आने वाले संसर्पनाम के संक्रान्तिहीन मास पर लागू नहीं होते, अपितु वे क्षयमास के बाद आने वाले संक्रान्तिहीन मास पर ही लागू होते हैं।]

इस प्रकार सभी जाबालि आदि ऋषियों एवम् माधव, कमलाकरभट्ट, अनन्तदेव, म.म. वाचस्पति मिश्र, वैद्यनाथ दीक्षित आदि निबन्धकारों ने संसर्प मास को एक स्वर से शुद्ध बतलाया है। **इसके अनुसार सं. २०३९ वि. में आश्विन संसर्प सर्वथा शुद्ध है, उसे अधिमास मानना शास्त्रोल्लंघन है।**

संसर्प को अधिमास मान लेने पर एक मास

हमारे पंचाङ्ग से लुप्त हो जाता है। इस लुप्तमास को ये (संसर्प को अधिमास मानने वाले) लोग क्षयमास में मिला देते हैं, और क्षयमास को दो मासों का मिश्रण बना देते हैं, जिससे अनेक ऐसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं, जिनका समाधान सम्भव ही नहीं है। सं. २०३६ के उन पंचाङ्गों में, जिनमें आश्विन संसर्प को अधिमास माना गया है, क्षयमास माघ में पौषमास समाविष्ट कर दिया गया है, जिससे इन पंचाङ्गों में माघकृष्णपक्ष माघशुक्लपक्ष के बाद आया है। माघ-स्नान जो एक महीने तक चलता है, इन पंचाङ्गों के अनुसार समाप्त हो गया है, माघ और पौष के व्रत-पर्वों का हज़ारों वर्षों से चला आ रहा क्रम बुरी तरह बिगड़ गया है—इसी प्रकार की अन्य अनेकों अव्यवस्थाएं संसर्प को अशुद्ध मानने से उत्पन्न हुई हैं। इस पुस्तक को पढ़िए, आप स्वयं समझ जाएंगे – कि संसर्प को शुद्ध मानना ठीक है या अशुद्ध मानना।

—*प्रियव्रत*

ज्येष्ठशुक्ल पूर्णिमा
सं. २०३६ वि.

अशुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४	२२	आधार यर	आधार पर
१५	२०-२१	चान्द्र मासों ही	चान्द्र मासों को ही
१६	१३	संसर्पाशुद्धि पक्ष के अनुसार	संसर्पशुद्धि पक्ष के अनुसार
३२	७	दीनों संसर्प	दोनों संसर्प
३७	१६-१७	दो प्रकार के संसर्पों की चर्चा की है।	दो प्रकार के संसर्पों में कर्त्तव्य का निर्देश स्पष्ट शब्दों में किया है।
६५	२२	हेतूपम्यासपूर्वक	हेतूपन्यासपूर्वक
१२०	२३	गणनिमीलिकया	गजनिमीलिकया
१३०	१०	प्रतिपाद्यमानां	प्रतिपाद्यमानानां
१३४	२२-२३	"क्षयप्राक्संग्यधि-मासक"	"क्षयप्राक्संग्यधिमा-सकं"
१५३	२०	क्षयमासत्	क्षयमास

—:o:—

विषय-सूची

—:o:—

क्षयाधिमास विमर्श

क्षयमास के कारण सं. २०३९ के व्रतपर्वों में उत्पन्न मतभेद का तार्किक विश्लेषण

सं. २०३९ में क्षयमास के कारण आश्विन शुक्ल से फाल्गुन कृष्ण (ता. १८-९-८२ से १२-२-८३) तक के नवरात्र, दशहरा, दीवाली आदि सभी त्योहारों की तारीखों के बारे में पंचाङ्गकारों में भारी मतभेद पैदा हो गया है। प्रयत्न करने पर भी यह मतभेद दूर नहीं हो पाया। इस मतभेद के मूल कारणों को यहां हम सर्वसाधारण के लिए अत्यन्त सरल भाषा और शैली में लिख रहे हैं, इसे ध्यान से पढ़िए। आप यदि पंचाङ्ग के बारे में साधारण ज्ञान भी रखते हैं तो भी आप इस मतभेद के कारणों को समझ जाएंगे। यह भी आपको स्पष्ट हो जाएगा कि कौन सा मत ठीक है।

गुरुवायूर (केरल) में अनन्तश्री विभूषित श्री जगद्गुरु शंकराचार्य कांचीमठ (मद्रास) के पवित्र सान्निध्य में १७ से १९ अगस्त '८१ तक तीन दिन की एक अखिल भारतीय क्षयमास

विमर्श सभा हुई। इसमें हम दोनों भाइयों द्वारा अपने पक्ष की पुष्टि के लिए जो तर्क उपस्थापित किए गए उनका प्रचुर भाग इस लेख में दिया गया है। काशी की श्री गीर्वाण वाग्-वर्धिनी सभा और काशिराजन्यास रामनगर द्वारा इस विवाद पर प्रकाशित दो ("सं. २०३९ का क्षयाधिमास निर्णय" तथा "अधिमास क्षयमास विचार") पुस्तिकाओं की समीक्षा भी यहां की गई है।

पहिले सौरमास, चान्द्रमास आदि वे बातें पाठक को समझाई गई हैं जो क्षयमास सम्बन्धी इस विवाद को समझने के लिए जरूरी है। लीजिए, पढ़िए, इस समस्या को आप आसानी से समझ लेंगे।

सौरमास

जितने समय में सूर्य एक राशि को पार करता है, उस समय को सौरमास कहते हैं। मेष राशि में सूर्य जितने दिन रहता है, उस सौरमास को पंजाब आदि प्रान्तों में वैशाख, जितने दिन वह वृष राशि में रहता है, उसे ज्येष्ठ सौरमास कहते हैं...आदि-आदि। अर्थात् ये प्रविष्टे वाले देसी महीने ही सौरमास कहलाते हैं। जिस सौरमास में सूर्य मेष में रहता है उसे "सौर मेषमास", जिस सौरमास में सूर्य वृष राशि में रहता है उसे "सौर वृषमास"...इत्यादि कहने की प्रथा भी कुछ प्रान्तों में है। हम इस लेख में इन संज्ञाओं को भी प्रयोग में लाएंगे। इन सौरमासों का अंग्रेजी महीनों की तरह अपनी-अपनी मौसम (वसन्त आदि) से स्थिर सम्बन्ध है। उदाहरण

के रूप में वैशाख सौरमास में जो मौसम आज कल चल रहा है अक्सर वही मौसम वैशाख में भविष्य में भी रहेगा। क्योंकि अंग्रेजी महीने (जन. फर. आदि) भी अपनी-अपनी मौसम से जुड़े रहते हैं, इस लिए इन सौरमासों का इन अंग्रेजी महीनों से भी सम्बन्ध लगभग स्थिर ही है। जैसे मेषसंक्रान्ति (वैशाख प्रविष्टा एक) अक्सर १३ अप्रै. को और वृषसंक्रान्ति (ज्येष्ठ प्रविष्टा एक) १४ मई को ही अक्सर पड़ती है।

सूर्य की राशियों के आधार पर ही ऋतुओं का निर्णय किया जाता है। जैसे—सूर्य मीन और मेष में हो तो वसन्त ऋतु वृष और मिथुन में हो तो ग्रीष्म ऋतु इत्यादि।

बड़े से बड़ा सौरमास ३१ दिन ११ घण्टे और छोटे से छोटा २९ दिन ११ घण्टे का होता है।

सौर वर्ष

१२ सौरमासों को एक सौर वर्ष कहते हैं। एक सौर वर्ष में छः (वसन्त आदि) ऋतुएं पूरा चक्कर लगा लेती हैं। सौर वर्ष की लम्बाई लगभग ३६५ दिन ६ घण्टा होती है।

चान्द्रमास

३० तिथियों का एक चान्द्रमास होता है। चान्द्रमास दो तरह के हैं—(१) शुक्लादि। (२) कृष्णादि। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से (अमावस की समाप्ति से) प्रारम्भ हो कर अगली अमावस की समाप्ति पर समाप्त होने वाला चान्द्रमास "शुक्लादि चान्द्रमास" कहलाता है। कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा

(पूर्णिमा की समाप्ति) से प्रारम्भ हो कर अगली पूर्णिमा की समाप्ति पर समाप्त होने वाले चान्द्रमास को "कृष्णादि चान्द्रमास" कहते हैं। "शुक्लादि चान्द्रमास" दक्षिण भारत में और "कृष्णादि चान्द्रमास" उत्तरी भारत (पंजाब आदि) में प्रयोग में आते हैं। 'कृष्णादि चान्द्रमासों' में पहिले कृष्ण पक्ष और बाद में शुक्ल पक्ष आता है। 'शुक्लादि चान्द्रमासों' में उल्टा है—है—शुक्ल पक्ष पहिले कृष्ण पक्ष बाद में। दक्षिण भारत और उत्तर भारत के पंचाङ्ग उठा कर देखिए— इन पंचाङ्गों में चैत्र, वैशाख आदि चान्द्रमासों के शुक्ल पक्ष के नाम (चैत्र शुक्ल पक्ष, वैशाख शुक्ल पक्ष आदि) एक जैसे ही हैं। उदाहरणार्थ—उत्तर भारत के पंचाङ्ग में जिस पक्ष को वैशाख शुक्ल लिखा है। दक्षिण भारत के पंचाङ्ग में भी उसे वैशाख शुक्ल ही लिखा होगा। लेकिन जिस पक्ष को उत्तरी भारत के पंचाङ्ग में ज्येष्ठ कृष्ण लिखा होगा उसे दक्षिण भारत के पंचाङ्ग में वैशाख कृष्ण लिखा होगा। इस प्रकार यह समझ लेना चाहिए—'कृष्णादि चन्द्रमास' के हिसाब से जो वैशाख शुक्ल और ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष हैं 'शुक्लादि चान्द्रमास' के हिसाब से यह वैशाख शुक्ल और वैशाख कृष्ण पक्ष हैं। इसी प्रकार पंजाब, उ.प्र. आदि के पंचाङ्गों में जिन्हें ज्येष्ठ शुक्ल और आषा. कृष्ण पक्ष लिखा होता है उन्हें "शुक्लादि चान्द्रमास" के हिसाब से दक्षिण भारत के पंचाङ्गों में ज्येष्ठ शुक्ल और ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष लिखा होता है। "कृष्णादि चान्द्रमास" के हिसाब से दीवाली कार्तिक कृष्ण में पड़ती है। शुक्लादि हिसाब से यह कार्तिककृष्ण आश्विनकृष्ण कहलाता है, अतः दक्षिण भारत वाले कहते हैं—दीवाली आश्विन कृष्ण में होती है।

कृष्णादि और शुक्लादि चान्द्रमासों के अनुसार पक्षों के नाम नीचे कोष्ठक में दिए गए हैं :—

कृष्णादि चान्द्रमास के पक्ष, उ.भारत	शुक्लादि चान्द्रमास के पक्ष, द.भारत	कृष्णादि चान्द्रमास के पक्ष, उ.भारत	शुक्लादि चान्द्रमास के पक्ष, द.भारत
चैत्र शुक्ल	चैत्र शुक्ल	आश्वि. शुक्ल	आश्वि. शुक्ल
वैशा. कृष्ण	चैत्र कृष्ण	कार्ति. कृष्ण	आश्वि. कृष्ण
वैशा. शुक्ल	वैशा. शुक्ल	कार्ति. शुक्ल	कार्ति. शुक्ल
ज्येष्ठ कृष्ण	वैशा. कृष्ण	मार्ग कृष्ण	कार्ति. कृष्ण
ज्येष्ठ शुक्ल	ज्येष्ठ शुक्ल	मार्ग. शुक्ल	मार्ग. शुक्ल
आषा. कृष्ण	ज्येष्ठ कृष्ण	पौष कृष्ण	मार्ग. कृष्ण
आषा शुक्ल	आषा. शुक्ल	पौष शुक्ल	पौष शुक्ल
श्राव. कृष्ण	आषा. कृष्ण	माघ कृष्ण	पौष कृष्ण
श्राव. शुक्ल	श्राव. शुक्ल	माघ शुक्ल	माघ शुक्ल
भाद्र. कृष्ण	श्राव. कृष्ण	फाल्गु. कृष्ण	माघ कृष्ण
भाद्र. शुक्ल	भाद्र. शुक्ल	फाल्गु. शुक्ल	फाल्गु. शुक्ल
आश्वि. कृष्ण	भाद्र. कृष्ण	चैत्र कृष्ण	फाल्गु. कृष्ण

इस लेख में हम सब जगह 'शुक्लादि चान्द्रमास' को ही प्रयोग में लाएंगे। इस लेख में जहां कहीं हम 'चान्द्रमास' शब्द का प्रयोग करेंगे वहां सर्वत्र 'शुक्लादि चान्द्रमास' ही समझना चाहिए, 'कृष्णादि चान्द्रमास' नहीं—यह ध्यान में रखिए। जहां कहीं हम 'कृष्णादि चान्द्रमास' की चर्चा करना चाहेंगे, वहां हम 'चान्द्रमास' न

लिख कर स्पष्ट रूप में 'कृष्णादि चान्द्रमास' शब्द का प्रयोग करेंगे।

यह जान लेना चाहिए—चान्द्रमास ठीक अमान्त काल (जिस टाईम अमावस्या समाप्त होती है वहां) से ही प्रारम्भ होता है। जब (जिस टाईम) अगली अमावस्या समाप्त होती है, ठीक वहीं पर वह समाप्त होता है।

बड़े से बड़ा चान्द्रमास २९ दिन १८ घण्टे और छोटे से छोटा २९ दिन ७ घण्टे का होता है।

अधिकमास और चान्द्रमासों का नामकरण

जैसा कि हम ऊपर बतला चुके हैं—सौर मासों का वसन्त आदि ऋतुओं से अच्छेद्य सम्बन्ध है। सौर वर्ष (१२ सौरमासों) की लम्बाई ३६५ दिन ६ घण्टा और चान्द्र वर्ष (१२ चान्द्र-मासों) की लम्बाई लगभ ३५४ दिन है। इस प्रकार स्पष्ट है कि १२ सौरमासों की लम्बाई १२ चान्द्रमासों की लम्बाई से ११ दिन अधिक हैं। अर्थात् जितने दिनों में १२ सौर मास गुज़रते हैं, १२ चान्द्रमास उससे ११ दिन पहले ही गुज़र जाते हैं। मान लीजिए—किसी वर्ष १३ अप्रैल को मेष संक्रान्ति हुई, उसी दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा भी थी। क्योंकि १२ चान्द्रमास गुज़रने में कुल ३५४ दिन लगेंगे। इसलिए इससे अगले वर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदा मेषसंक्रान्ति (१३ अप्रैल) से ११ दिन पहले (अर्थात् २ अप्रैल) को ही आ जाएगी। इस से भी अगले वर्ष वह (चैत्र शुक्ल प्रतिपदा) और भी ११ दिन पहले (अर्थात् २२ मार्च) को आ जाएगी। इस प्रकार आगे-आगे प्रतिवर्ष

(प्रत्येक १२ चान्द्रमासों में) सौर और चान्द्रमासों का यह अन्तर ११-११ दिन बढ़ता जाएगा। इसका परिणाम यह होगा—लगभग ५ साल बाद चैत्र शुक्ल प्रतिपदा मेषसंक्रान्ति के दिन (अर्थात् १३ अप्रैल या एक वैशाख) से ६० दिन पहले ही आ जाएगी। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि तब (पांच साल बाद) मेषसंक्रान्ति के दिन (अर्थात् १३ अप्रैल) को ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपदा होगी। सौर और चान्द्रमासों का यह अन्तर उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाएगा और १५-१६ वर्षों में अन्तर ६ मास तक हो जाएगा, अर्थात् १५-१६ वर्षों में चान्द्र मासों की संख्या सौरमासों की संख्या से ६ अधिक हो जाएगी। इसका परिणाम यह होगा कि १५-१६ वर्ष बाद चैत्र चान्द्रमास तुला संक्रान्ति (अर्थात् १६ अक्तूबर) के आस पास पड़ेगा और चैत्र चान्द्रमास के सभी रामनवमी आदि त्योहार, जोकि आजकल वसन्त में पड़ते हैं, शरद्-हेमन्त में पड़ने लग जाएंगे। इसके साथ ही दूसरे चान्द्रमास की ऋतुओं में भी ज़मीन आसमान का अन्तर पैदा हो जाएगा। क्योंकि हमारे सभी व्रतपर्व चान्द्र-मासों के अनुसार ही मनाए जाते हैं और व्रतपर्वों का अपनी-अपनी ऋतु से घनिष्ठ सम्बन्ध भी है इस लिए चान्द्रमासों को ऋतुओं (सौरमासों) के साथ स्थायी रूप से जोड़ने के लिए हमारे ऋषियों ने एक उपाय सोचा कि यदि चान्द्रमासों को सूर्य की राशियों (संक्रान्तियों) के साथ स्थायी रूप से जोड़ दिया जाए तो सौरमासों की भान्ति चान्द्रमास भी ऋतुओं से स्थायी रूप में जुड़ जाएंगे। इसके लिए उन्होंने चान्द्रमासों के चैत्र, वैशाख आदि नामों को सूर्य की संक्रान्तियों से जोड़ने का नियम बनाया। इस नियम के अनुसार यह निश्चित किया गया कि जिस चान्द्रमास में सूर्य की मेषसंक्रान्ति हो उस चान्द्रमास को

चैत्र, जिस चान्द्रमास में सूर्य की वृषसंक्रान्ति हो उसे वैशाख माना जाए...आदि-आदि । सूर्यसंक्रान्तियों के आधार पर चान्द्रमासों के नामकरण की इस पद्धति को 'संक्रान्ति पद्धति' कहते हैं। चान्द्रमासों के नामकरण की एक और पद्धति भी है जिसे 'पूर्ति पद्धति' कहते हैं। इस पद्धति के अनुसार जिस चान्द्रमास की पूर्त्ति (समाप्ति अर्थात् अमावस्या की समाप्ति) के समय सूर्य मेष में हो उस चान्द्रमास को चैत्र, जिसकी समाप्ति के समय सूर्य वृष में हो वह वैशाख कहलाता है...आदि-आदि। इन दोनों पद्धतियों से चान्द्रमासों के नामकरण में कोई अन्तर नहीं आता—यह स्पष्ट है। इन दोनों पद्धतियों से चान्द्रमासों के नामकरण का स्पष्टीकरण नीचे कोष्ठक द्वारा किया गया है—

सूर्यसंक्रान्ति तथा अमान्त के समय सूर्य की राशि	चान्द्रमास का नाम
मेष	चैत्र
वृष	वैशाख
मिथुन	ज्येष्ठ
कर्क	आषाढ़
सिंह	श्रावण
कन्या	भाद्रपद
तुला	आश्विन
वृश्चिक	कार्त्तिक
धनु	मार्गशीर्ष
मकर	पौष
कुम्भ	माघ
मीन	फाल्गुन

जैसा कि ऊपर बतला चुके हैं—१२ चान्द्रमासों के दिनों की संख्या १२ सौरमासों के दिनों की संख्या से ११ कम है, अतः लगभग (मध्यम मान से) ३२ मासों में चान्द्रमासों की संख्या सौरमासों की संख्या से १ अधिक हो जाती है। जब चान्द्रमास सौरमास से १ मास अधिक हो जाता है, तब चान्द्रमास में सूर्य की संक्रान्ति नहीं हो पाती, अर्थात् वह संक्रान्तिहीन हो जाता है। इस संक्रान्तिहीन मास को अधिकमास, अधिमास मलमास, मलिम्लुचमास या अशुद्धमास भी कहा जाता है।

अधिकमास की उत्पत्ति को इस प्रकार समझाया जा सकता है। मान लीजिए—चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के प्रारम्भ (अर्थात् 'चैत्र चान्द्र मास' के प्रारम्भ) में ही सूर्य की मेषसंक्रान्ति ('सौर मेषमास' की शुरूआत) हुई। क्योंकि सौरमास चान्द्रमास से लगभग १ दिन बड़ा है, अतः एक मास बाद वृषसंक्रान्ति ('सौर वृषमास' के प्रारम्भ) के दिन लगभग वैशाख शुक्ल द्वितीया होगी। इसके बाद मिथुनसंक्रान्ति ('सौर मिथुनमास' के प्रारम्भ) के दिन ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया होगी। तदनन्तर कर्क संक्रान्ति ('सौर कर्कमास' के प्रारम्भ) के दिन आषाढ शुक्ल चतुर्थी होगी...आदि-आदि। इस प्रकार स्पष्ट है— सौरमास का प्रारम्भ-दिन चान्द्रमास के प्रारम्भ-दिन से प्रतिमास लगभग एक-एक दिन आगे बड़ता जा रहा है। अथवा ऐसे कहिए— सौरमास और चान्द्रमासों के प्रारम्भ काल में प्रति मास १ दिन का अन्तर बढ़ता जा रहा है। इस अन्तर को 'अधिशेष' अथवा 'अधिमास शेष' कहा जाता है। क्योंकि चान्द्रमासों की लम्बाई सौरमास की लम्बाई से अक्सर कम रहती है, अतः जब लगभग ३२ मासों में अधिशेष जब लगभग ३० दिन के

बराबर हो जाता है तब एक चान्द्रमास में सूर्य की संक्रान्ति नहीं हो पाती। यही संक्रान्तिहीन चान्द्रमास अधिमास समझा जाता है। "संक्रान्ति पद्धति" के अनुसार अधिमास का कोई नाम नहीं बनता, लेकिन इसे परवर्त्ती चान्द्रमास के ही नाम से पुकारा जाता है। इस प्रकार अधिमास अपने परवर्त्ती मास से मिल कर ६० तिथियों वाला मास बन जाता है।

मध्यममान से अधिमास अपने पूर्ववर्त्ती अधिमास से लगभग ३२ मास बाद आता है। स्पष्ट मान से दो अधिमासों के बीच कम से कम अन्तर २८ मास और अधिक से अधिक ३५ मास होता है।

चैत्र आदि चान्द्रमासों का वसन्त आदि ऋतुओं से स्थायी सम्बन्ध बनाने के उद्देश्य से ही अधिमास की यह कल्पना की गई है—यह स्पष्ट है। यदि अधिमास की कल्पना भारतीय ज्योतिषी न करते तो मुहर्रम आदि मुसलमानी मासों की भान्ति हमारे चैत्र आदि चान्द्र-मास भी प्रत्येक ३३ वर्ष के चक्र में प्रत्येक ऋतु में से गुज़रने लगते। ऐसी स्थिति में वसन्त पञ्चमी, शारद नवरात्र, वासन्त नवरात्र, शरत्पूर्णिमा आदि हमारे पर्व, जो विशेष ऋतुओं से सम्बद्ध हैं, अपनी-अपनी ऋतुओं में नहीं मनाए जा सकते थे।

अधिमास षष्टितिथ्यात्मक एवम् परवर्त्तीमास का पूर्वार्ध होता है

संक्रान्तिरहित चान्द्रमास के नाम का निर्धारण "संक्रान्ति

पद्धति" के अनुसार तो किया नहीं जा सकता। "पूर्ति पद्धति" के अनुसार यदि उसका नाम रखा जाए तो वह अपने पूर्ववर्त्ती मास की संज्ञा वाला होगा। लेकिन धर्मशास्त्रकारों के आदेशानुसार इसे परवर्त्ती चान्द्रमास का ही पूर्वार्ध माना गया है। शास्त्र कहते हैं—अधिमास अपने परवर्त्ती चान्द्रमास से मिलकर ६० तिथि वाला एक मास बनता है। इस ६० तिथि वाले मास के पूर्वार्ध (अर्थात् असंक्रान्तमास) में कोई शुभ कार्य या व्रत-पर्व नहीं करना चाहिए—

षष्ट्या तु दिवसैर्मासः कथितो वादरायणैः।
पूर्वमर्धं परित्यज्य कर्त्तव्या उत्तरे क्रियाः॥

अधिमास को परवर्त्ती चान्द्रमास का ही अंग (भाग) सभी शास्त्र मानते हैं। हेमाद्रि का वचन है—

"अधिमासस्योत्तरमासपूर्वार्धत्वादुत्तरमाससंज्ञा।
तदुक्तम्—आद्यो मलिम्लुचो ज्ञेयो द्वितीयः प्राकृतः स्मृतः।
षष्टिदिनात्मकस्य 'आद्यः' = पूर्वभागः, मलिम्लुचः अशुद्धः, कर्मानर्हो ज्ञेयः। 'द्वितीयः' = उत्तरो भागः, 'प्राकृतः' = शुद्धः, इत्यर्थः।"

'वीरमित्रोदय' के समयप्रकाश में भी यही लिखा है कि जब मलमास आता है तब ६० दिनों (तिथियों) का एक मास होता है—

ननु यदा मलमासो भवति तदा कथं द्विमास ऋतुरितिचेत्— "षष्ट्यातु दिवसैः मासः..." इति वचनात् षष्टिदिनात्मकस्य मासस्यैकत्वात्।

आगे चल कर वीरमित्रोदयकार ने स्पष्ट कहा है कि अधिकमास दूसरे साधारण (संक्रान्तियुक्त) मासों की अपेक्षा दुगुना मास होता है और वह परवर्त्ती मास की संज्ञा वाला होता है—

"तमतिक्रम्य तु रवि गंच्छेत्कदाचन। आद्यो मलिम्लुचो ज्ञेयो द्वितीयः प्राकृतः स्मृतः"—(अत्र)आद्य-द्वितीय-शब्दाभ्याम् तस्येतरमासापेक्षया द्वैगुण्यम्, उत्तरमाससंज्ञत्वं च सूचयति।

क्षयमास

जिस चान्द्रमास में दो सूर्य संक्रान्तियां आ जाएं उसे क्षयमास कहा जाता है। क्षयमास का दूसरा नाम अंहस्पति भी है। क्षयमास बहुत ही कम आता है। आजकल सूर्य मन्दोच्च की स्थिति के कारण एक चान्द्रमास में या तो वृश्चिक-धनु या धनु-मकर अथवा मकर-कुम्भ संक्रान्तियां ही हो सकती हैं—अर्थात् इन दिनों एक चान्द्रमास में इन दो-दो संक्रान्तियों के ही होने से क्षयमास बनता है, शेष कोई भी दो संक्रान्तियां वर्तमान सूर्यमन्दोच्च की स्थिति में एक चान्द्रमास में इन दिनों घटित नहीं होती। ज्यों-ज्यों सूर्यमन्दोच्च अपनी मन्द गति से आगे बढ़ता जाएगा, त्यों-त्यों अन्य संक्रान्तियुगल भी एक चान्द्रमास में घटित होने की स्थिति में आते जाएंगे। क्षयमास दो शताब्दियों में सामान्यतः तीन बार आता है।

संसर्प

जब भी क्षयमास आता है तब अनिवार्य रूप से दो संक्रान्ति-

हीन चान्द्रमास इस (क्षयमास) के आगे पीछे आया करते हैं, इन में से एक असंक्रान्तमास क्षयमास से पहिले तीन मासों के भीतर और दूसरा भी क्षयमास के बाद तीन मासों के ही भीतर होता है। क्षयमास से पहिले आने वाले संक्रान्ति रहित चान्द्रमास को शास्त्रकारों ने संसर्प संज्ञा दी है।

संसर्प दो प्रकार का होता है :—

(१) अव्यवहितपूर्व संसर्प :—जिस संसर्प और क्षयमास के मध्य में कोई संक्रान्तियुक्त चान्द्रमास न पड़ा हो, अर्थात् जिस संसर्प के तुरन्त बाद ही दो संक्रान्तियों वाला चान्द्रमास (क्षयमास) आ जाए उसे अव्यवहितपूर्व (क्षयमास से जुड़ा हुआ) संसर्प कहते हैं।

(२) व्यवहितपूर्व संसर्प :—जिस संसर्प और क्षयमास के मध्य सक्रान्तियुक्त एक या एक से अधिक चान्द्रमास पड़े हों उसे व्यवहितपूर्व संसर्प कहते हैं।

क्षयमास से पूर्वापरवर्त्ती इन दो असंक्रान्त चान्द्रमासों का परस्पर अन्तर लगभग ४-५ मास होता है, जो एक विरल घटना है, क्योंकि अधिमासोत्पत्ति सिद्धान्त के अनुसार दो अधिमास (जिन्हें सामान्यतः संक्रान्तिहीनमास कहा जाता है) लगभग २½ वर्षों के अन्तर पर ही घटित होते हैं। क्या क्षयमास के पूर्वापरवर्त्ती दोनों असंक्रान्तमासों को अधिकमास (६० तिथियों वाले मास) मान लिया जाए अथवा इन में से किसी एक को ही अधिकमास माना जाए ?— यह प्रश्न उपस्थित है। लगभग सभी शास्त्रकारों ने क्षयमास के बाद आने वाले असंक्रान्तमास को अधिकमास (षष्टितिथ्यात्मक मासका पूर्वार्धं)

श्रौर संसर्पमास को अनधिकमास (सामान्यमास, अर्थात् ३० तिथियों वाला मास) घोषित किया है। लेकिन कुछेक परिगणित ऐसे वाक्य भी उपलब्ध होते हैं जो प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं, अप्रत्यक्षरूप से संसर्प को त्रिंशत्तिथ्यात्मकमास मानने के पक्ष में नहीं हैं। संसर्प को शुद्ध (त्रिंशत्तिथ्यात्मक) मास मानने वाला पक्ष, जिसे हम यहां पर 'संसर्प शुद्धि पक्ष' के नाम से पुकारेंगे, अधिमासोत्पत्ति सिद्धान्त के सर्वथा अनुकूल है। इसे अशुद्ध (षष्टितिथ्यात्मक मास का पूर्वार्ध) मानने वाला पक्ष जिसे हम 'संसर्पाशुद्धि पक्ष' कहेंगे, सर्वथा असैद्धान्तिक है—यह प्रतिपादन हम आगे चल कर करेंगे। इस से पहिले हम संसर्प को शुद्ध एवम् अशुद्ध मानने के कारण संसर्प से क्षय मास तक के मासों के नामों में होने वाले व्यत्यय के बारे में कुछ बतला देना चाहते हैं—

यदि संसर्प को अधिमास अर्थात् (षष्टितिथ्यात्मकमास का पूर्वार्ध) मान लिया जाए तो इसका परवर्त्ती चान्द्रमास भी इसी (संसर्प) के नाम वाला मानना होगा। इसका परिणाम यह होगा कि क्षयमास को हमें या तो 'संक्रान्ति पद्धति' के के अनुसार दो नाम देने होंगे (क्योंकि इस क्षयमास में दो संक्रान्तियां हैं) अथवा "पूर्ति पद्धति" के अनुसार उसे एक ही नाम देने के लिए हमें बाधित होना पड़ेगा, जिस से एक चान्द्रमास पंचाङ्ग से ग़ायब हो जाएगा। यदि 'संसर्प' को शास्त्र वाक्यों (आगे चल कर उद्धृत किए गए) के आधार यर तीस तिथि वाला मास मान लिया जाए तब क्षयमास को दो नाम देने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी और न ही पंचाङ्ग से कोई चान्द्रमास ही ग़ायब होगा। इस बात को हम वि.सं. २०३९ के क्षयमास

और संसर्प के उदाहरण द्वारा इस प्रकार स्पष्ट करते हैं :—

अंग्रेज़ी तारीख	'संसर्प शुद्धिपक्ष' के अनुसार चान्द्रमान नाम	'संसर्प शुद्धिपक्ष' के अनुसार चान्द्रमास नाम	चान्द्रमास में पड़ने वाली सूर्यसंक्रान्ति
१९-९-८२ से १६-१०-८२	प्रथम आश्विन (संसर्प)	आश्विन (संसर्प)	संक्रान्ति नहीं
१७-१०-८२ से १५-११-८२	द्वितीय (शुद्ध) आश्विन	कार्त्तिक	तुला
१६-११-८२ से १५-१२-८२	कार्त्तिक	मार्गशीर्ष	वृश्चिक
१६-११-८२ से १४-१-८३	मार्गशीर्ष	पौष	धनु
१५-१-८३ से १२-२-८३	पौष-माघ (क्षयमास)	माघ (क्षयमास)	मकर, कुम्भ
१३-२-८३ से १४-३-८३	प्रथम फाल्गुन	प्रथम फाल्गुन	संक्रान्ति नहीं
१५-३-८३ से १३-४-८३	द्वितीय फाल्गुन	द्वितीय फाल्गुन	मीन

(ध्यान दें—यहां पाठकों को एक बार फिर बतला देते हैं जैसा कि हम पहिले लिख चुके हैं, हम यहां शुक्लादि चान्द्रमासों ही प्रयोग में ला रहे हैं।)

ऊपर कोष्ठक में 'संसर्पा शुद्धिपक्ष' के अनुसार मकर और कुम्भ दो संक्रान्ति वाले चान्द्रमास के जो दो नाम पौष-माघ लिखे हैं, वे 'संक्रान्ति पद्धति' के अनुसार हैं, यदि यहां 'पूर्त्ति पद्धति' का अनुसरण 'संसर्पाशुद्धि पक्ष' वाले करें तो मकर और कुम्भ संक्रान्ति वाले मास का केवल माघ नाम ही रह जाएगा और पंचाङ्ग से पौषमास लुप्त हो जाएगा, क्योंकि—इस वर्ष मकर के सूर्य में किसी चान्द्रमास की समाप्ति नहीं हुई है।

इस कोष्ठक से स्पष्ट है संसर्प को ३० तिथि वाला मास मानने पर इस (संसर्प) के परवर्त्ती चान्द्रमास क्रमश: कार्त्तिक, मार्गशीर्ष, पौष और माघ (क्षयमास) हैं। कोष्ठक देखिए—संसर्पाशुद्धि पक्ष (संसर्प को षष्टि-तिथ्यात्मक मास का पूर्वार्ध मानने वाले पक्ष) के अनुसार इन मासों के नामों में अन्तर है। इस में सन्देह नहीं कि संसर्पाशुद्धिपक्ष के अनुसार दिए गए संसर्प आश्विन मास के परवर्त्ती पौषमास तक के मासों के नाम न तो 'पूर्त्ति पद्धति' के अनुसार हैं, और न ही 'संक्रान्ति पद्धति' के अनुसार। इस पर कुछ लोग आपत्ति कर सकते हैं, लेकिन हम आगे दिए जाने वाले विवेचन द्वारा शास्त्रीय प्रमाणों एवं तर्कों से इसकी शास्त्रीयता स्पष्ट करेंगे। इस 'संसर्प शुद्धि पक्ष' का अनुसरण करने पर न तो किसी मास का लोप होता है और न ही क्षयमास में दो मासों का मिश्रण। यह सब से अच्छी व्यवस्था है। इस से पंचाङ्गों में मासों का क्रम यथावत् व्यवस्थित एवं व्यवहारयोग्य रहता है। शास्त्रकारों ने इसी व्यवस्था का उन्मुक्त-रूप से समर्थन किया है। अधिमास की उत्पत्ति का सिद्धान्त भी इसको ही प्रामाणिक सिद्ध करता है। संसर्प को षष्टितिथ्यात्मक मास का पूर्वार्ध मानने से व्रतपर्वों एवं पंचांगीय व्यवस्था में आने

जाना चाहिए, फिर भी कालाधिक्य न होने के कारण उसे अधिमास नहीं मानना चाहिए। हेमाद्रि का वचन है—

"यद्येकस्मिन् वत्सरे संक्रान्तिरहितं मासद्वयं भवतीति तयोरेक एव मलमास: द्वात्रिंशन्मासादूर्ध्वं यः सम्पद्यते। अपर: संक्रान्तिरहितोऽपि न मलमास:, अकालाधिक्यात्, कालाधिक्यस्यैव मलत्वात्।"

वैद्यनाथ दीक्षित के "स्मृतिमुक्ताफल" में भी क्षयमास से परवर्त्ती असंक्रान्तमास को ही कालाधिक्यप्रयुक्त मान कर अधिमास माना है—

"असंक्रान्तमासद्वयमध्यवर्त्तिन: क्षयमासस्य अंहस्पतित्वात् तदुत्तरवर्त्तिन: असंक्रान्तस्य कालाधिक्येन अधिकमासत्वात् मासद्वयमेतन्निन्दितम्।"

निर्णयसिन्धुकार ने भी क्षयमास से परवर्त्ती असंक्रान्तमास में ही कालाधिक्य माना है—

"उत्तर एव कालाधिक्यं न पूर्वस्मिन्।"

कृष्णम्भट्ट मीमांसक भी संसर्प (क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्त) मास में अपूपदान आदि अधिमाससम्बन्धी कृत्यों का निषेध करते हैं। उनका कहना है कि संसर्प में कालाधिक्य नहीं है—

"संसर्पे नाधिमासिकम्, कालस्यानाधिक्यात्।"

कालमाधवकार भी ठीक यही कहते हैं—

"क्षयोत्तरभाविन: असंक्रान्तस्य कालाधिक्यादधिकमासत्वम्।"

सभी निबन्धों एवं स्मृतिग्रन्थों में एक वर्ष में आने वाले दो असंक्रान्तमासों में से दूसरे (क्षयोत्तरवर्त्ती) असंक्रान्तमास को ही अधिमास माना गया है, और पहिले (क्षयपूर्ववर्त्ती) असंक्रान्तमास के अधिमासत्व का उन्होंने स्पष्ट रूप में निषेध किया है। जाबालि का वाक्य है—

एकस्मिन्नपि वर्षे चेद् द्वौ मासावधिमासकौ।
पूर्वोमासः प्रशस्तः स्यादुत्तरस्त्वधिमासकः॥

शातातप भी इसका समर्थन करते हैं—

एकत्र मासद्वितयं यदि स्याद्वर्षेऽधिकं तत्र परोऽधिमासः।

इसी प्रकार अन्य अनेक वचन उपलब्ध हैं जो क्षयोत्तरवर्त्ती असंक्रान्त को ही अधिमास कहते हैं। जैसे—

मासद्वयेऽब्दमध्ये तु संक्रान्तिर्न यदा भवेत्।
प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यादधिमासस्तथोत्तरः॥

निम्नलिखित आर्षवाक्य तो और भी स्पष्ट रूप में कह रहा है कि अधिमास का असंक्रान्तत्वरूप लक्षण यद्यपि एक वर्ष में आने वाले दोनों असंक्रान्त मासों में घटित होता है, फिर भी क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास को अधिमास न मान कर केवल क्षयोत्तरवर्त्ती असंक्रान्तमास को ही अधिमास माना जाए—

एकस्मिन्नपि वर्षे यत्रेदं लक्ष्म दृश्यते उभयोः।
तत्रोत्तरोऽधिमासः स्फुटगत्या चायमर्केन्द्वोः॥

"स्मृतिमुक्ताफल' में भी यही लिखा है कि यद्यपि एक ही

वर्ष में घटित होने वाले दोनों असंक्रान्तमास परिभाषानुसार अधिकमास की कोटि में आते हैं, तथापि उनमें से पहिले असंक्रान्तमास में अधिकमासत्व नहीं माना गया—

"वर्षेऽप्येकस्मिन् यदि द्वौ मलमासौ पूर्वोऽसक्रान्तोऽपि कर्मण्यः, परो मलमासः। ......असक्रान्तत्वेन अधिकत्व-प्रसक्तियुक्तयोः मध्ये पूर्वस्य अधिमासत्वनिषेधात्।"

"पुरुषार्थ चिन्तामणि" में—"चैत्रादर्वाङ् नाधिमासः पर-तस्त्वधिको भवेत्। दृष्टा हि सर्वशास्त्रेषु तस्मिन् मूर्त्ति-स्त्रयोदशी॥"—ब्रह्मसिद्धान्त के इस वाक्य की व्याख्या में लिखा है—

"चैत्रादर्वाक् क्षयमासात्पूर्वो योऽसंक्रान्तः स नाधि-मासः, किन्तु क्षयमासात् परतो योऽसंक्रान्तः स एवाधि-मासः, इति।"

"कृत्यसार समुच्चय" में अमृतनाथ शर्मा भी यही कहते हैं—

"......क्षयाख्यपूर्वमासस्य न मलमासता। किन्तु क्षयाख्योत्तरमासस्यैव।"

"जयसिंह कल्पद्रुम"कार ने भी संसर्प को मलमास नहीं माना, अपितु क्षयोत्तरवर्त्ती असंक्रान्तमास को ही मलमास माना है—

"ससर्पोऽसक्रान्तोऽपि न मलमासः किन्तु शुद्धतुल्यः, उत्तर एवासक्रान्तो मलमासः।"

इस प्रकार संसर्प का अनधिकमासत्व सभी आर्ष एवं अनार्ष वाक्यों से पूरी तरह अनुमोदित है।

संसर्प त्रिंशत्तिथ्यात्मक है

क्योंकि ऊपर दिए गए प्रतिपादन से यह पूरी तरह सिद्ध है कि संसर्पमास अधिकमास नहीं है, अतएव यह भी स्वतः सिद्ध हो जाता है कि संसर्प षष्टितिथ्यात्मक मास न हो कर त्रिंशत्तिथ्यात्मक मास है। यह तो हम पहिले बतला ही चुके हैं कि अधिमास होने की स्थिति में ही मास षष्टितिथ्यात्मक होता है, जब कि संसर्प में अधिकमासत्व नहीं है, तब यह भी अनुवृत्त ही है कि उसमें षष्टितिथ्यात्मकत्व भी नहीं है। यदि कोई उसे षष्टितिथ्यात्मक मानता है तब यह स्पष्ट है कि वह उसे अधिकमास भी मानता है, जिससे संसर्प के अधिकमासत्व के निषेधक पूर्वोक्त सभी वचनों से उसका विरोध होगा। अतः संसर्प को त्रिंशत्तिथ्यात्मक ही मानना होगा। 'भीमपराक्रम' का वचन है कि क्षयोत्तरवर्त्ती असंक्रान्त मास ही अधिकमास है और उसकी संज्ञा ६० दिनों (तिथियों) को व्याप्त करती है, क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास अधिकमास नहीं है, उसकी संज्ञा तीस तिथियों तक ही चलती है—

"......यत्र एकत्राब्दे मासद्वितयमधिकं स्यात् अधिकलक्षणवत्त्वादधिकतया सम्भाव्येत, तत्र पर एवासंक्रान्तमासोऽधिमासः षष्टिदिनपर्याप्तैकसंज्ञाकोऽधिमासः, न तु पूर्वः तस्य त्रिंशद्दिवसपर्यवसितसंज्ञकत्वात्।"

क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास (संसर्प) को 'प्राकृत' कहा गया है ('प्राकृत स्तत्र पूर्वः स्यात्)। यहां 'प्राकृत' की व्युत्पत्ति करते हुए श्री कृष्णम्भट्ट ने संसर्प को त्रिशत्तिथ्यात्मक ही सिद्ध किया है—

"प्रकृतिः स्वभावः त्रिशद्दिनरूपस्तद्युक्तः अनधिकः शुद्धः कर्मार्हः इति यावत्।"

साराँश यह है जब संसर्प को धर्मशास्त्रकारों ने अधिकमास नहीं माना तब संसर्प का त्रिशत्तिथ्यात्मकत्व स्वतः आपतित हो जाता है।

संसर्प से क्षयमासपर्यन्त मासों का नामकरण

जब संसर्प अनधिकमास है, त्रिशत्तिथ्यात्मक है, तब इसे परवर्त्ती मास का पूर्वार्ध नहीं माना जा सकता (अथवा यूं कहिए—परवर्त्तीमास इस संसर्प का उत्तरार्ध नहीं हो सकता), क्योंकि ऐसा करने से पुनः संसर्प अधिकमास बन जाएगा और पूर्वोद्धृत उन सभी वचनों से विरोध उत्पन्न होगा जो संसर्प के अधिकमासत्व का निषेध करते हैं। अतः यह सिद्ध है कि संसर्प के परवर्त्ती मास को वह संज्ञा नहीं दी जा सकती जो संसर्पमास की है। इसी प्रकार हमें संसर्पोत्तरवर्त्ती मास से क्षयपूर्ववर्त्ती मास तक के सभी मासों की वे संज्ञाएं बदल डालनी होंगी जो "संक्रान्ति पद्धति" के अनुसार बनती हैं। उदाहरणार्थ—सं. २०३९ वि. में संसर्पमास आश्विन है। इसके बाद तुलासंक्रान्ति वाला मास है। 'संक्रान्ति पद्धति" के अनुसार इस मास का नाम भी यद्यपि आश्विन ही होना चाहिए,

लेकिन ऐसा करने से संसर्पमास आश्विन षष्टितिथ्यात्मक (यानी अधिकमास) बन जाएगा, जिससे शास्त्रविरोध होगा। अतः इसे आश्विन न कह कर हम कार्त्तिक कहेंगे। इसी प्रकार तदुत्तरवर्त्ती वृश्चिक और धनु संक्रान्ति वाले मासों को 'संक्रान्ति पद्धति के अनुसार क्रमशः कार्त्तिक और मार्गशीर्ष न कह कर हमें मार्गशीर्ष और पौष कहना होगा। तदनन्तर मकर और कुम्भ—दो संक्रान्ति वाले क्षयमास को "संक्रान्ति पद्धति" के अनुसार पौष और माघ—ये दो नाम न दे कर केवल एक ही माघ नाम दिया जाएगा। ध्यान रहे— 'पूर्त्तिपद्धति' के अनुसार भी तो इस दो (मकर-कुम्भ) संक्रान्ति वाले मास का नाम केवल माघ ही बनता है, क्योंकि इस द्विसंक्रान्तमास के अमान्त के समय सूर्य कुम्भ में ही है। इस प्रणाली से पौष मास का पृथक् अस्तित्व हो गया है। इस तरह स्पष्ट है—क्षयमास में दो मासों (पौष और माघ) के मिश्रण से यह "संसर्प शुद्धि पक्ष" बचाता है, जिससे व्रत-पर्व आदि में वे सभी असह्य अव्यवस्थाएं, जो "संसर्पाशुद्धि पक्ष" से उत्पन्न होती हैं (जिन की विस्तृत चर्चा हम आगे चल कर करने जा रहे हैं) समाप्त हो जाती हैं।

यहाँ पर यह आपत्ति उठाना कि "सक्रान्ति पद्धति" एवं "पूर्त्तिपद्धति" का तिरस्कार करके चान्द्रमासों का नामकरण अशास्त्रीय है—न्यायसंगत नहीं है। क्योंकि ऐसा न करने से संसर्पमास को अधिकमास न मानने का आदेश देने वाले शास्त्र-वाक्य व्यर्थ हो जाते हैं। मीमांसाशास्त्र के अनुसार जब कोई शास्त्रवाक्य व्यर्थ होने लगता है तब यह समझा जाता है कि वह शास्त्रवाक्य अप्रत्यक्ष रूप से कुछ और भी संकेत करता है जिसके अनुसरण से वह शास्त्रवाक्य सार्थक हो सकता है। इसे

मीमांसा की भाषा में कहा जाता है— "व्यर्थं सत् किंचित् ज्ञापयति" (अर्थात्— शास्त्रवाक्य जब व्यर्थ बनने लगता है तब निश्चित रूप में उसका अभिप्राय कुछ और भी है— ऐसा समझना चाहिए)। इस न्याय (तर्क) को समझाने के लिए हम एक साधारण उदाहरण लेते हैं— अपने पति के मृत शरीर के पास विलाप कर रही बांझ पतिव्रता स्त्री को किसी सिद्ध महात्मा ने आशीर्वाद दिया— "पुत्रवती भव" (पुत्रवती बनो)। यह आशीर्वाद का वाक्य स्वतः व्यर्थ है, क्योंकि बांझ विधवा पतिव्रता पुत्रवती नहीं हो सकती। अतः "व्यर्थं सत् किंचित् ज्ञापयति"— न्याय के अनुसार स्पष्ट है— आशीर्वाद का अभिप्राय स्त्री के बांझपन की निवृत्ति एवं उसके पतिके पुनर्जीवन से भी है, अन्यथा महात्मा का आशीर्वाद निरर्थक हो जाएगा। इसी प्रकार जब संसर्पमास को शास्त्रवाक्य अनधिकमास (३० तिथि वाला) कहते हैं तब संसर्प के बाद वाले क्षयमास तक के मासों के नामपरिवर्तन से भी उनका अभिप्राय है, अन्यथा संसर्प को अनधिकमास एवं ३० तिथि वाला मास कहने वाले शास्त्रवाक्य निरर्थक हो जाएंगे।

मीमांसा से तो यह बात सिद्ध हो गई कि संसर्प के परवर्ती मासों के नाम बदलना तर्कसंगत है। अब हम शास्त्रों के ऐसे वाक्य भी उद्धृत करते हैं जो स्पष्टरूप में कहते हैं कि क्षयमास आने पर "संक्रान्ति पद्धति" के अनुसार चान्द्रमासों के नामकरण का नियम खण्डित हो जाता है। महाभारत का वचन है—

मेषादयो द्वादश स्युः चैत्रादिषु यथाक्रमम्।
क्षयाधिकेष्वागतेषु नियमोऽयं न लभ्यते॥

वसिष्ठ का भी ऐसा ही वचन है—

चैत्रादिमासेषु यथाक्रमेण मेषादयो द्वादश राशयः स्युः।
न्यूनाधिमासेषु समागतेषु चलन्ति तेभ्यो नियतिं विनापि ॥

('वसिष्ठसंहिता'—अर्कचाराध्याय, श्लोक ३)

इस प्रकार संसर्प को अधिकमास मानने वालों का यह आक्षेप पूरी तरह खण्डित हो गया।

अव्यवहितपूर्व और व्यवहितपूर्व—दोनों संसर्प त्रिंशत्तिथ्यात्मक मासिककृत्यों के लिए शुद्ध हैं

"संसर्पाशुद्धि पक्ष" वाले लोग प्रत्येक संसर्प को अशुद्ध (मासिक व्रतपर्वों के लिए अग्राह्य) नहीं मानते, अपितु वे अव्यवहितपूर्व संसर्प को शुद्ध (मासिक व्रत-पर्वादि के लिए ग्राह्य) एवम् व्यवहित संसर्प को अशुद्ध मानते हैं। उनका कहना है—संसर्प संक्रान्तिहीन होने के कारण अधिकमास होने से षष्टि-तिथ्यात्मक है, अतः जब वह व्यवहितपूर्व होता है, तब उसका शुद्ध(निज)मास उपलब्ध रहता है[1] इस स्थिति में उस (संसर्प मास) के सभी मासिक कृत्य उसके शुद्ध(निज)मास में ही करने होंगे, क्योंकि शुद्ध (निज)मास के होते हुए अशुद्ध (अधिकमास) में उनका अनुष्ठान तर्कसंगत नहीं है। लेकिन जब संसर्प अव्यवहितपूर्व होता है, तब उसका शुद्ध(निज)मास क्षयमास में समाविष्ट रहता है, उसका पृथक् अस्तित्व नहीं रहता। इस स्थिति में उसके मासिककृत्य संसर्प (असंक्रान्त)

---

१. जैसे सं. २०३९ में संसर्पाशुद्धिपक्षानुसार प्रथम आश्विन संसर्प के बाद द्वितीय (शुद्ध) आश्विन उपलब्ध है (देखें पृष्ठ १५)।

वाली असह्य अनियमितताएं (जिनका निर्देश हम आगे चल कर विस्तार से करेंगे) इस 'संसर्प शुद्धिपक्ष' से दूर हो जाती हैं।

संसर्प अधिकमास नहीं है

जैसा कि हम ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं— अधिशेष प्रतिमास लगभग १ दिन बढ़ता है। लगभग ३० मासों में वह एक अधिकमास बनता है, अतः क्षयमास से पहिले और बाद में परस्पर ४-५ मासों के ही अन्तर पर आने वाले दोनों असंक्रान्तमासों को अधिकमास मानना सिद्धान्तविरुद्ध है, क्योंकि ४-५ मासों में ही चान्द्रमास सौरमास से एक मास किसी भी हालत में अधिक नहीं हो सकता। अधिकमास का शाब्दिक अर्थ भी यही है—सौरमास से एक मास आगे बढ़ा हुआ चान्द्रमास। वस्तुतस्तु क्षयमास के पूर्वापरवर्त्ती दोनों असंक्रान्तमासों में से कालाधिक्य वाला (अर्थात्—सौर और चान्द्रमासों के अन्तर से उत्पन्न होने वाला) असंक्रान्तमास ही अधिकमास माना जाएगा। जहां शास्त्रों में असंक्रान्तमास को अधिकमास लिखा है, वहां उनका अभिप्राय कालाधिक्य वाले असंक्रान्तमास से ही है, यह बात आगे उद्धृत किए जा रहे अनेक वचनों से स्पष्ट है। जो असंक्रान्तमास सौर और चान्द्रमासों के अन्तर (अर्थात्—कालाधिक्य) से उत्पन्न नहीं है, केवल गणित से प्राप्त है, उसे शास्त्रकारों ने अधिमास नहीं माना। ज्योतिःशास्त्र का वचन है—

असंक्रान्तो हि यो मासः कदाचित्तिथिवृद्धितः।
कालान्तरात्समायाति स नपुंसक उच्यते॥

अर्थात्—वही असंक्रान्तमास नपुंसक (अधिकमास) माना जाता है, जो सूर्य चन्द्र के कालगत अन्तर से उत्पन्न तिथिवृद्धि (अधिशेष की वृद्धि) से घटित होता है।

इस वाक्य से सुस्पष्ट है कि कालाधिक्य से उत्पन्न असंक्रान्तमास ही अधिकमास माना गया है, अन्य नहीं। यदि असंक्रान्तमात्र मास को अधिकमास मानने की बात होती तब यहां विशेष प्रकार के (कालान्तरजन्य, तिथिवृद्धि से घटित) असंक्रान्तमास को अधिमास कहना अर्थहीन होता। इससे स्पष्ट है, सभी असंक्रान्त मास अधिकमास नहीं कहला सकते। जिस असंक्रान्त मास में कालाधिक्य होगा वही अधिकमास कहलाएगा, अन्य नहीं। "असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटःस्यात्"—इत्यादि वाक्य जो असंक्रान्तमात्र मास को अधिकमास कहते हैं, वे बाहुल्याभिप्रायक हैं, क्योंकि लगभग ९६ प्रतिशत असंक्रान्तमास कालाधिक्य से ही उत्पन्न होते हैं, केवल ४ प्रतिशत असंक्रान्तमास ही ऐसे हैं, जो कालाधिक्य की उपज नहीं है, ये सभी संसर्पमास ही हैं।

ऋष्यशृङ्ग यह वाक्य भी सौर-चान्द्र-संवत्सरों के अन्तर [सौर संवत्सर से चान्द्र संवत्सर के अतिरेक (अधिक्य)] को ही त्रयोदशमास (अधिमास) कह रहा है—

संवत्सरातिरेको वै मासश्चैव त्रयोदशः।
असुराणां तु मासोऽसौ तस्मादेव विगर्हितः॥

"श्रीवैद्यनाथ दीक्षितीयम्" में उद्धृत 'पितृमेधसार' का यह वाक्य भी सौर-चान्द्र वर्षों के अन्तर से उत्पन्न होने वाले तेरहवें मास को ही अधिमास कहता है—

"चान्द्रात्सौरातिरेकेण संवत्सरे कदाचित् त्रयोदशो मासः, सोऽधिमास ।"

हेमाद्रि भी सौरवर्षमान की चाद्रवर्षमान से अधिकता (कालाधिक्य) के कारण ही अधिकमास को अपवित्र (कर्मानर्ह) बतलाता है—

"अधिकमासस्य कालाधिक्येनापवित्रत्वात् ।"

मीमांसक माधव भी मलमास की उत्पत्ति में कालाधिक्य को ही कारण बतला रहा है—

"मलत्वं च कालाधिक्यात् ।"

'कीर्त्तिप्रकाश'कार ने तो स्पष्ट रूप में कहा है कि— वही असंक्रान्तमास अधिकमास होगा जो कालवृद्धि (कालाधिक्य) से उत्पन्न होगा—

"यः कालवृद्ध्याऽसंक्रान्तः सोऽधिमासः ।"

"विष्णुधर्मोत्तर" पुराण का यह निम्नांकित वाक्य भी स्पष्ट कह रहा है कि चान्द्रमान से सौरवर्षान्त में ११ दिन अधिशेष उत्पन्न होता है, और वही ३२ मासों में संकलित हो कर एक मास बन जाता है, जो सौरमासों की अपेक्षा एक अतिरिक्त (अधिक) चान्द्रमास है : इसे ही अधिमास कहते हैं—

सौरसंवत्सरस्यान्ते मानेन शशिजेन तु ।
एकादशातिरिच्यन्ते दिनानि भृगुनन्दन ॥

समाद्वये चाष्टमासे तस्मान्मासोऽतिरिच्यते ।
स चाधिमासकः प्रोक्तः काम्यकर्मसु गर्हितः ।।

इस प्रकार स्पष्ट है— सभी असंक्रान्तमास अधिकमास (षष्टितिथ्यात्मकमास के पूर्वार्ध) नहीं हो सकते । केवल वही असंक्रान्तमास अधिकमास माना जाएगा जो कालाधिक्य से उत्पन्न होगा । 'सूर्यसिद्धान्त'कार ने भी संक्रान्ति रहित मास के रूप में अधिकमास को परिभाषित नहीं किया, अपितु उसने सौरमासों से अधिक होने वाले चान्द्रमासों को ही अधिकमास कहा है, और तदनुसार युग के अधिमास जानने के लिए युगीय चान्द्रमास संख्या में से उसने युगीय सौरमासों को घटाया है—

"भवन्ति शशिनो मासाः सूर्येन्दुभगणान्तरम् ।
रविमासोनितास्ते तु शेषाः स्युरधिमासकाः ।।

भास्कराचार्य ने भी 'सिद्धान्तशिरोमणि' के वासनाभाष्य में अधिमासोपपत्ति देते हुए कहा है कि कल्प में जितने चान्द्रमास सौरमासों से अधिक होते हैं, उतने ही कल्प में अधिमास होते हैं—

"यावन्तश्चान्द्रमासाः कल्पेऽधिका भवन्ति तत्संख्या अधिमाससंख्या तज्ज्ञैः कल्पिता ।।

इन सभी वाक्यों से अच्छी स्पष्ट हो जाता है कि सौरमासों से चान्द्रमास जितने अधिक होंगे उतने ही अधिकमास माने जाएंगे, उससे अधिक नहीं । प्रायेण यह देखा गया है कि

जब सौरमास संख्या से चान्द्रमास संख्या १ अधिक होती है तब एक चान्द्रमास संक्रान्तिशून्य हो जाता है, अतः प्रायेण उसी संक्रान्तिशून्यमास को अधिकमास कहने की परम्परा बन गई और "असंक्रान्तिमासोऽधिमासः" इस प्रकार अधिमास की परिभाषा शास्त्रकारों ने बाहुल्याभिप्रायेण कर दी। लेकिन जितने संक्रान्तिहीन मास एक युग या कल्प में घटित होते हैं, उतने ही अधिकमास (सौर और चान्द्रमासों के अन्तर से उत्पन्न मास) युग या कल्प में नहीं होते, क्योंकि क्षयमास आने पर दो संक्रान्तिहीन मास ४-५ मासों के अन्तर पर ही घटित हो जाते हैं (या ऐसा कहिए, ३५ मासों के भीतर ही दो संक्रान्तिहीन मास आ पड़ते हैं)। इन दोनों असंक्रान्त-मासों को सौरचान्द्रमासों के अन्तर से उत्पन्न नहीं मान सकते, क्योंकि अधिमासोपपत्ति से यह निर्विवाद सिद्ध है कि दो स्पष्ट अधिमासों का अन्तर २८ मास से कम नहीं हो सकता। मुनीश्वर ने भी अपने "सिद्धान्तसार्वभौम" के वासनाभाष्य में यही बात स्पष्ट लिखी है—

"यस्मिन् (वर्षे) क्षयमासस्तदासन्नावधिकाले पूर्व-मुत्तरत्रापि अधिमासावश्यम्भवात् 'द्वात्रिंशद्भिः गतैः मासैः...' इत्युक्त्या अधिमासान्तरकालान्तरालासम्भवतया द्वयोस्तयोरधिमासयोः समावेशोऽत्यन्तैकवर्षाल्पान्तरतया-ऽनुचित एव। स्पष्टस्य मध्यममानासन्नत्रावश्यम्भावेना-धिमासयोः स्पष्टयोः अन्तरालकालस्यापि अष्टाविंशति-(२८) मासाल्पत्वासम्भवात्।"

किञ्च यह तो हम पहिले बतला चुके हैं कि चान्द्रमासों

का अपनी-अपनी ऋतुओं से स्थायी सम्बन्ध बनाए रखना ही अधिमास की कल्पना का एक मात्र उद्देश्य है। क्षयमास के दोनों ओर आने वाले दो असंक्रान्तमासों में से केवल एक ही असंक्रान्तमास को ऋतुओं से सम्बन्ध बनाए रखने के लिए अधिमास (षष्टितिथ्यात्मक) बनाया जा सकता है, दोनों को नहीं।

अतः सिद्ध है—क्षयमास से पूर्वापरवर्ती दो असंक्रान्तमासों में से केवल एक ही अधिमास बनने का अधिकारी है, दोनों कदापि नहीं। इनमें से कालाधिक्य से उत्पन्न केवल एक ही असंक्रान्तमास है जो अधिमास माना जाएगा। विगत वि.सं. २०३७ में ज्येष्ठ अधिमास था। इसके बाद लगभग ३०-३५ मास बाद वि सं. २०३९ में कालाधिक्यवश एक अधिमास तो अनिवार्यतः घटित होना ही चाहिए। लेकिन यहां (सं० २०३९ में) आश्विन और फाल्गुन—दो असंक्रान्त हो गए हैं, जो वि.सं. २०३७ के ज्येष्ठ अधिमास से क्रमशः २८ और ३३ मास बाद आए हैं। क्योंकि अधिमासोपपत्ति से स्पष्ट है—कोई अधिमास अपने पूर्ववर्त्ती अधिमास से कम से कम २८ मास और अधिक से अधिक ३५ मास बाद घटित हो सकता है। अतः "क्षयमास से पूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास को अधिकमास माना जाए अथवा परवर्त्ती असंक्रान्तमास को" —यह निर्णय करने के लिए हम अधिमासोत्पत्ति-सिद्धान्त एवं धर्मशास्त्रीय वाक्यों का आश्रय लेंगे।

अधिमासोत्पत्तिसिद्धान्त बतलाता है कि अधिशेष एक वर्ष में ११ दिन के हिसाब से बढ़ते हुए लगभग अढ़ाई वर्ष बाद चान्द्रमासतुल्य होने पर अधिमास बन कर लगभग शून्य

हो जाता है। तब वह (अधिशेष) पुनः उसी हिसाब से बढ़ते हुए पहिले अधिमास से लगभग अढ़ाई वर्ष बाद दुबारा अधिमास का रूप धारण करता है। उपपत्ति से स्पष्ट है कि सौर-चान्द्रवर्षों के अन्तर से अधिमास का निर्माण करने में अधिशेष को २८ मास से कम काल कभी नहीं लगता। लेकिन यदि क्षयमास से पूर्ववर्त्ती असंक्रान्त (संसर्प)—मास को अधिकमास मान लिया जाए तो उसके बाद अधिशेष लगभग शून्य हो जाने पर भी केवल ४-५ मास के अनन्तर क्षयमास के बाद वह (अधिशेष) पुनः पूर्ववत् मासतुल्य बन जाता है और वह फिर से पूर्ववर्त्ती अधिमास के ४-५ मास बाद ही एक और अधिकमास उत्पन्न कर डालता है। यदि संसर्पमास वास्तव में ही अधिकमास होता तो उसके ४-५ बाद ही दुबारा अधिमास सिद्धान्ततः उत्पन्न नहीं हो सकता था, क्योंकि ४-५ मासों के भीतर ही सौरमास से चान्द्रमास एक अधिक नहीं हो सकता। उपपत्ति बतलाती है—चान्द्रमास को सौरमास से एक अधिक होने के लिए कम से कम २८ मास तो अनिवार्यतः लगते हैं। इससे सिद्ध है— संसर्पमास असंक्रान्तमास के रूप में अधिशेष को हमारे सौरचान्द्र पंचाङ्ग से केवल ४-५ मासों के लिए ही बहिष्कृत कर पाता है, क्षयमास होते ही वह अधिशेष पूर्ववत् लगभग मासतुल्य बन कर पुनः उपस्थित हो जाता है, अतः संसर्प असंक्रान्तमास ही है, अधिमास (षष्टितिथ्यात्मक) नहीं। क्षयोत्तरवर्त्ती असंक्रान्तमास मास ही

कालाधिक्यजन्य अधिमास है, क्योंकि उसके घटित हो जाने के बाद अधिशेष शून्य बन कर आगे २८ मास से पहिले पुनः अधिमास नहीं बन पाता।

उपरोक्त विवेचन से यह सिद्ध हो गया कि—केवल असंक्रान्त मास को अधिकमास नहीं माना जा सकता, अपितु वही असंक्रान्तमास अधिकमास माना जाएगा, जो कालाधिक्य से उत्पन्न हो। इसके अनुसार संस्कृत में हम अधिमास को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं—

"कालाधिक्ये सति असंक्रान्तत्वम् अधिकमासत्वम्।"

कुछ लोग हमारी अधिमास की इस परिभाषा पर आपत्ति कर सकते हैं कि— "असंक्रान्तमात्र मास को ही यत्र-तत्र अनेक ग्रन्थों में अधिमास लिखा गया है, 'कालाधिक्य' को अधिमास के हेतु के रूप में उन्होंने निर्दिष्ट नहीं किया है।"—ऐसी बात नहीं है। पूर्वोक्त अधिमासोत्पत्ति तथा सूर्यसिद्धान्त आदि द्वारा प्रतिपादित अधिमाससम्बन्धी विवेचन से अधिमासत्व में असंक्रान्तत्व के साथ कालाधिक्य भी अपरिहार्य हेतु सिद्ध होता है। केवल असंक्रान्तत्व को अधिमासत्व प्रयोजक बतलाने वाले वाक्य बाहुल्याभिप्रायक हैं— यह भी हम पहिले बतला चुके हैं।

धर्मशास्त्र के वाक्य भी उपरोक्त प्रतिपादन का समर्थन करते हैं वे स्पष्ट रूप में यह कहते हैं कि—क्षयमास से पूर्ववर्त्ती संक्रान्तिहीन मास यद्यपि अधिमास की प्रचलित (असंक्रान्तत्व-रूप) परिभाषा के अनुसार अधिमास के रूप में स्वीकार किया

में ही करने पड़ेंगे। "संसर्पाशुद्धि पक्ष" वालों का कहना है कि ऐसा करने से व्यवहितसंसर्प की स्थिति में संसर्प के परवर्त्ती क्षयमास तक के चान्द्रमासों के नाम "संक्रान्ति पद्धति" एवं "पूर्ति पद्धति" के अनुसार बने रहते हैं, उनमें वह परिवर्तन नहीं करना पड़ता जो "संसर्पशुद्धिपक्ष" में करना पड़ता है।

"संसर्पाशुद्धिपक्ष" वालों के कथन का सारांश यह है कि —व्यवहितसंसर्प असंक्रान्त होने से षष्टितिथ्यात्मक अधिमास का पूर्वार्ध है, वह शुद्ध नहीं है। संसर्प को शुद्ध, कर्मार्ह बताने वाले सभी वाक्य अव्यवहित संसर्प के विषय में सावकाश हैं, उनका वहां समन्वय हो जाता है।

"संसर्पाशुद्धिपक्ष" वालों के उपरोक्त सिद्धान्त की हम यहां समीक्षा करेंगे—

संसर्प, जैसा कि हम पीछे पृष्ठ १७ पर धर्मशास्त्रीय वचनों एवम् अधिमासोत्पत्तिसिद्धान्त द्वारा सिद्ध कर चुके हैं, अधिमास नहीं है। इसी लिए वह षष्टितिथ्यात्मक नहीं हो सकता, क्योंकि अधिमास होने की स्थिति में ही चान्द्रमास षष्टितिथ्यात्मक होता है। इस प्रकार व्यवहित संसर्प भी त्रिंशत्तिथ्यात्मक ही होता है। जब वह त्रिंशत्तिथ्यात्मक ही है तब उसके शुद्ध(निज)मास के अस्तित्व का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। अतः "संसर्पाशुद्धिपक्ष" वालों का यह कहना गलत है—कि व्यवहित संसर्प के मासिक कृत्य उसके शुद्ध(निज)-मास में ही किए जाएं। स्पष्ट है— जब संसर्पमास अनधिक-मास होने से त्रिंशत्तिथ्यात्मक ही है तब उसके मासिक कृत्य उसी में अनुष्ठित किए जाएंगे।

किसी भी स्मृति या संहिता के वाक्य में व्यवहित संसर्प को अशुद्ध और अव्यवहित संसर्प को शुद्ध नहीं लिखा गया है, अपितु उनके सभी वाक्य संसर्पमात्र को शुद्ध, अनधिकमास बतलाते हैं। यही बात निबन्धकारों की भी है।

इसी तरह "संसर्पाशुद्धिपक्ष"धरों द्वारा अव्यवहित संसर्प की शुद्धता में यह कारण बताना सर्वथा गलत है कि उस (अव्यवहित संसर्प) के शुद्ध (निज) मास का क्षयमास में समावेश होने से पृथक् अस्तित्व नहीं है। क्योंकि अव्यवहित संसर्प भी अनधिमास होने से त्रिंशत्तिथ्यात्मक ही है। अतः उसके शुद्ध (निज) मास का क्षयमास में समावेश समझना असत्कल्पनामात्र ही है।

जैसा कि पृष्ठ १७ पर प्रतिपादित कर चुके हैं—संसर्प के अनधिकमासत्व में कालाधिक्याभाव ही हेतु हैं। क्योंकि व्यवहितपूर्व और अव्यवहितपूर्व दोनों प्रकार के संसर्पों में अनधिकमासत्व का हेतु कालाधिक्याभाव समानरूप से विद्यमान है, इस लिए व्यवहित संसर्प को अधिकमास नहीं माना जा सकता, अतएव वह षष्टितिथ्यात्मक न हो कर त्रिंशत्तिथ्यात्मक ही है।

"व्यवहित संसर्प को शुद्ध (त्रिंशत्तिथ्यात्मक) मानने से "संक्रान्ति पद्धति" एवं "पूर्त्ति पद्धति" के अनुसार संसर्प और क्षयमास के मध्यगत मासों का नामकरण ठीक नहीं बैठता"—इस आधार पर व्यवहित संसर्प को बीसों शास्त्रवाक्यों के विरुद्ध

अधिमास (षष्टि तिथ्यात्मक) मानना न्यायसंगत नहीं है, क्योंकि संसर्पशुद्धिपक्षानुसार अपनाई गई संसर्पोत्तरवर्त्ती क्षयमास तक के मासों के नामकरण की प्रणाली पूरी तरह मीमांसानुमोदित है, वसिष्ठादि के पूर्वोद्धृत वचन भी इसका पूरा समर्थन करते हैं। जबकि धर्मशास्त्र क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास (संसर्प) को अधिमास स्वीकार नहीं करते, उसे वे षष्टितिथ्यात्मक नहीं मानते, तब यह अनुवृत्त है कि वे संसर्प और क्षयमास के मध्यगत मासों के नाम भी बदल डालने के पक्ष में में है, अन्यथा क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास को अनधिकमास बतलाने वाले उनके वाक्य व्यर्थ हो जाएंगे। "क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास (संसर्प) को अनधिकमास (शुद्ध) बतलाने वाले उनके वाक्य अव्यवहितपूर्व संसर्प के विषय में सार्थक (सावकाश) हैं"—यह कहना भी अयुक्त है, क्योंकि संसर्प की अनधिमासता का प्रयोजक "कालाधिक्याभाव" व्यवहित संसर्प में भी निहित है।

स्मृतियां एवं निबन्ध संसर्पमात्र को शुद्ध कहते हैं

सभी स्मृति, संहिता एवं निबन्धकारों के वाक्य, जो संसर्प को अनधिकमास या शुद्ध कहते हैं, व्यवहिताव्यवहितनिरपेक्ष हैं। कोई भी स्मृति या संहिता का वाक्य ले लीजिए, सर्वत्र संसर्पमात्र को वह अनधिमास एवं शुद्ध कहता है। यहां तक कि इन स्मृति-संहितावाक्यों की व्याख्या करने वाले निर्णयसिन्धु, पुरुषार्थचिन्तामणि, कालमाधव, स्मृतिमुक्ताफल, मासमीमांसा, चतुर्वर्गचिन्तामणि, कृत्यसारसमुच्चय, जयसिंहकल्पद्रुम आदि सभी निबन्धग्रन्थों में कहीं भी व्यवहितपूर्व-अव्यवहितपूर्वसापेक्ष संसर्पमास की शुद्धता एवं अशुद्धता का

निर्णय नहीं दिया गया, अपितु सभी निबन्धकारों ने संसर्पमात्र को शुद्ध, अनधिकमास लिखा है। आश्चर्य की बात तो यह है—प्रत्येक निबन्धकार ने संसर्प को अनधिकमास बतलाने वाले "मासद्वयेब्दमध्ये तु संक्रान्तिर्न यदा भवेत्। प्राकृतस्तत्रपूर्वः स्यादधिमासस्तथोत्तरः।" आदि वाक्यों की व्याख्या सुविस्तार से की है। इस व्याख्या में उन्होंने ७-७, ८-८ पृष्ठ संसर्प के अनधिमासत्व और कर्मार्हता के प्रतिपादन में लिखे हैं, लेकिन इनमें से किसी एक निबन्धकार ने भी यह लिखा तक नहीं कि केवल अव्यवहित संसर्प ही शुद्ध, कर्मार्ह होता है, व्यवहित संसर्प नहीं। क्या इससे भी स्पष्ट नहीं होता कि ये सभी कमलाकरभट्ट, माधव, वैद्यनाथदीक्षित, गोकुलनाथोपाध्याय, हेमाद्रि आदि मीमांसक व्यवहितपूर्व और अव्यवहितपूर्व दोनों ही प्रकार के संसर्पों को अनधिमास, शुद्ध, कर्मार्ह मानते थे? लगभग सभी इन मीमांसकों ने संसर्प को अकालप्रवृत्त, कालाधिक्याभाववान्, असंक्रान्तमास बतलाते हुए अनधिकमास घोषित किया है, अधिमासोत्पत्ति की उपपत्ति भी जिसका पूरा समर्थन करती है। कालाधिक्याभाव दोनों (व्यवहित और अव्यवहित) संसर्पों में समानरूप से विद्यमान रहता है—अतः इन दोनों को त्रिंशत्तिथ्यात्मक मानना ज्योतिश्शास्त्र की दृष्टि से भी युक्ति-युक्त है। निबन्धकारों ने भी संसर्पमात्र को अनधिकमास कह कर इसका समर्थन किया है।

आचार्य कमलाकर ने "सिद्धान्ततत्त्वविवेक" की शेष-वासना में केवल अव्यवहित संसर्प को ही मासिक कृत्यों के लिए शुद्ध बतलाया। व्यवहित संसर्प को कमलाकर षष्टितिथ्यात्मक मानते हैं। कमलाकर ने अपने इस मत के समर्थन में वही तर्क उपस्थापित किए हैं जो "संसर्पशुद्धिपक्ष" वाले उपस्थापित करते हैं। इन तर्कों का निरास हम पहिले ही कर चुके हैं। पूर्वाग्रह-वश अनेक सिद्धान्तोपपन्न पदार्थों के खण्डन की प्रवृत्ति कमलाकर में अनेकत्र दिखाई पड़ती है, भास्करप्रतिपादित वेलान्तर के खण्डन में उनके सिद्धान्तहीन प्रयास से सभी परिचित हैं।

श्रीकृष्णभट्ट ने "निर्णय सिन्धु" के "मलमास निरूपण" की व्याख्या में व्यवहित और अव्यवहित दोनों प्रकार के संसर्पों को समानरूप से अनधिमास, त्रिंशत्तिथ्यात्मक एवं मासिक कृत्यों के लिए ग्राह्य सिद्ध किया है।

धर्मसिन्धु के प्रणेता काशीनाथोपाध्याय ही एक ऐसे निबन्धकार हमारी दृष्टि में आए हैं, जिन्होंने संसर्प की चर्चा में व्यवहितपूर्व और अव्यवहितपूर्व—दो प्रकार के संसर्पों की चर्चा की है। इन्होंने दोनों प्रकार के संसर्पों को शुद्ध कर्मार्ह तो अवश्य माना है लेकिन ये व्यवहितपूर्व संसर्प को षष्टितिथ्यात्मक मानते हुए उसके पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दोनों मासों को समान-रूप से कर्मार्ह, शुद्ध लिखते हैं। उनका यह मत अधिकतर (लग-भग शत प्रतिशत) निबन्धकारों के मत के प्रतिकूल है। काशी-नाथोपाध्याय इस बारे में निश्चित भ्रान्त हैं।

सारांश यह है कि— संसर्प चाहे वह क्षयमास से व्यवहित-पूर्व हो या अव्यवहितपूर्व, प्रत्येक स्थिति में वह त्रिंशत्तिथ्यात्मक, मासिक कृत्यों के लिए शुद्ध, कर्मार्ह है। ज्योतिश्शास्त्रीय तर्क

एवं धर्मशास्त्रवाक्य भी इस बात का पूरा समर्थन करते हैं। संसर्प की कर्मार्हिता का प्रतिपादन करने वाले सभी वाक्य व्यवहिताव्यवहितनिरपेक्ष हैं।

सूर्यसिद्धान्त आदि के प्रणेता ऋषि भी व्यवहित-अव्यवहित-दोनों प्रकार के संसर्प को त्रिंशत्तिथ्यात्मक मानते हैं

अन्त में यहां एक बात जान लेनी चाहिए— दो शताब्दियों में लगभग ३ संसर्पमास घटित हो जाते हैं। इस हिसाब से एक कल्प में लगभग साढे छः करोड़ $\left(=\frac{३\times ४३२००००००००}{२००}\right)$ संसर्पमास आते हैं। सूर्यसिद्धान्त, ब्रह्मसिद्धान्त एवं सोमसिद्धान्त आदि सभी सिद्धान्तग्रन्थों में बतलाई गई कल्पीय अधिमाससंख्या में यह संख्या समाविष्ट नहीं की गई है। यदि संसर्पाशुद्धिपक्ष वालों के मतानुसार केवल व्यवहित संसर्पों को ही अधिमास मान लिया जाए तो भी एक कल्प में लगभग सवा तीन करोड़ व्यवहित संसर्प तो आएंगे ही, लेकिन सूर्यसिद्धान्त आदि ग्रन्थों में दी गई कल्पीय अधिमास संख्या में यह संख्या भी समाविष्ट नहीं है। इससे स्पष्ट है—इन सभी आर्ष सिद्धान्तों के प्रणेता किसी भी प्रकार के संसर्प को अधिकमास मानने के पक्ष में नहीं थे— इससे भी व्यवहित एवं अव्यवहित, दोनों प्रकार के संसर्पों की त्रिंशत्तिथ्यात्मकता सिद्ध होती है।

क्षयमास मासद्वयात्मक नहीं है

पूर्वोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संसर्प को अधिकमास (षष्टि-तिथ्यात्मक) मानने से ही क्षयमास में दो मासों के मिश्रण की स्थिति उत्पन्न होती है, यदि संसर्प को अनधिकमास (त्रिंशत्तिथ्यात्मक मास) माना जाए तब क्षयमास एकमासात्मक ही रहता है।

यहां हम क्षयमास को दो मासों का मिश्रण (मासद्वयात्मक) मानने वाले पक्ष को "मासयुगलीकरण" पक्ष कहेंगे। वैसे इस पक्ष और संसर्पाशुद्धिपक्ष में कोई अन्तर नहीं है।

क्योंकि क्षयमास में दो सूर्यसंक्रान्तियां होती हैं, अतः "संक्रान्तिपद्धति" के अनुसार उसे मासद्वयात्मक माना जाए—यह "संसर्पाशुद्धिपक्ष" वालों का तर्क है। क्षयमास की मासद्वयात्मकता के समर्थन में वे लोग निम्नांकित वाक्य भी उद्धृत करते हैं—

'द्विसंक्रान्तियुक्तस्य क्षयस्य मासद्वयत्वेन परिगणनात् ।'

(स्मृतिमुक्ताफल, श्राद्धकाण्ड)

'क्षयमासो मासंसंज्ञाप्रयोजकसंक्रान्तिद्वययुक्तत्वात् मासद्वयात्मकः ।'

(जयसिंहकल्पद्रुम)

'द्वे सक्रान्ती क्षयः स्यात्स एकोऽपि द्व्यात्मको भवेत् ।'

(रत्नमाला)

'यत्र मासि संक्रमद्वयं तत्र मासयुगलं क्षयाह्वयम् ।'

(रत्नावली)

'एक एव यदा मासः संक्रान्तिद्वयसंयुतः ।
मासद्वयगतं श्राद्धं मलमासेऽपि शस्यते ।'

(सत्यव्रत)

'मासद्वयोदितं कर्म तत्कुर्यादिति निर्णयः ।
एकस्मिन् मासि मासौ द्वौ यदि स्यातां तयोर्द्वयोः ।
तावेव पक्षौ ता एव तिथयस्त्रिंशदेव हि ॥'

(मदनरत्नोद्धृत स्मृत्यन्तरवचन)

एक और भी वाक्य है जो क्षयमास को बड़े ही अद्भुत ढं से मासद्वयात्मक बतलाता है । उसके अनुसार क्षयमास की प्रत्येक तिथि के दो भाग करके पूर्वार्ध को पहिले मास की और उत्तरार्ध को दूसरे मास की तिथि माना जाए । वह वाक्य इस प्रकार है-

तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वः प्रथमेऽर्धे तथोत्तरः ।
मासा विति बुधैश्चिन्त्यौ क्षयमासस्य मध्यगौ ॥

इस वाक्य के अनुसार सं. २०३९ के क्षयमास की प्रत्येक तिथि के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध को क्रमशः पौष और माघ की तिथियां मानना होगा । इस प्रकार क्षयमास की ३० तिथियों के दो-दो टुकड़े करके उनकी ६० तिथियां बना कर उन्हें दो मासों की तिथियां मानने का विलक्षण आदेश यह वाक्य करता है ।

क्षयमास को मासद्वयात्मक मास बतलाने वाले वाक्यों का संसर्प को अनधिमास (त्रिशत्तिथ्यात्मक) बतलाने वाले

वाक्यों से स्पष्ट विरोध है, क्योंकि यदि संसर्प को अनधिमास माना जाए तो क्षयमास मासद्वयात्मक नहीं रहता। इस विरोध के परिहार के लिए "संसर्पाशुद्धिपक्ष" के समर्थक कुछ मीमांसकों ने निम्नाङ्कित तर्क उपस्थित किए हैं—

संसर्प को अनधिकमास एवं शुद्ध, कर्मार्ह बतलाने वाले वाक्य तो मिलते ही है, लेकिन कुछ ऐसे वाक्य भी "संसर्पाशुद्धि-पक्ष" वालों द्वारा उद्धृत किए जाते हैं जो संसर्प को "सर्वकर्महर" "सभी शुभ कार्यों में अग्राह्य" बतलाते हैं। वे वाक्य इस प्रकार हैं—

यद्वर्षमध्येऽधिकमासयुग्मं
तत्कार्त्तिकादि त्रितये क्षयाख्यः।
मासत्रयं त्याज्यमिदं प्रयत्नाद्
विवाह-यज्ञोत्सव-मंगलेषु॥

(ज्योतिश्शास्त्र)

यस्मिन्मासि न संक्रांन्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा।
संसर्पांहस्पती मासौ सर्वकर्मबहिष्कृतौ॥

(केशव)

यस्मिन् वर्षे द्विसंक्रान्तोऽधिकमासद्वयं तथा।
तद्धिमासत्रयं दुष्टं सर्वेषु शुभकर्मसु॥

नारद का भी एक वाक्य है—

संक्रान्तिरहितो मासो यो वा संक्रान्तियुग्मयुक्।
पूर्वः संसर्पमासः स्यादंहस्पतिरथापरः॥
मलमासाविमौ प्रोक्तौ सर्वकर्मबहिष्कृतौ॥

अपि च

यस्मिन्मासे न संक्रान्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा ।
संसर्पांहस्पती एतौ अधिमासश्च निन्दिताः ॥

(बृहस्पति)

ये वाक्य संसर्प, अधिमास और अंहस्पति— तीनों को सभी कार्यों के लिए वर्ज्य कहते हैं और पृष्ठ २५ से २७ तक उद्धृत वाक्य संसर्प को अनधिकमास, प्रशस्त शुद्ध, प्राकृत एवं कर्मार्ह बतलाते हैं। संसर्पाशुद्धिपक्ष के अभिमानियों का कहना है— इन वाक्यों के विरोध का निवारण करने के लिए यह आवश्यक है कि इनकी व्यवस्था विषयभेदेन की जाए। संसर्प को शुद्ध, प्राकृत बतलाने वाले वाक्यों में प्राकृत, प्रशस्त एवं शुद्ध शब्द का अर्थ कुछ स्थलों पर सर्वकर्मार्हत्व और कुछ स्थलों पर विवाह-यज्ञ, उत्सव एवं मंगल आदि के अतिरिक्त सर्वकर्मार्हत्वरूप अर्थ है। उनका यह तर्क है कि व्यवहित संसर्प उनके पक्ष (संसर्पाशुद्धिपक्ष) के अनुसार षष्टितिथ्यात्मक है, उसका शुद्ध (निज) मास पृथक् उपलब्ध होता है। अतः संसर्प को "सर्व कर्महर" बतलाने वाले वाक्य वहां प्रवृत्त होते हैं, क्योंकि वहां पर शुद्ध (निज) मास के होते हुए अशुद्ध (असंक्रान्तमास) संसर्प में मासिककृत्य तथा विवाहादि शुभकृत्य नहीं किए जा सकते। अव्यवहित संसर्प की स्थिति में "संसर्पाशुद्धिपक्ष" के अनुमोदकों के अनुसार संसर्प का शुद्ध (निज) मास क्षयमास में प्रविष्ट रहता है, उसका पृथक् अस्तित्व नहीं रहता। अतः वहां अगत्या संसर्प को "सर्वकर्मग्राह्य" (मासिककृत्य एवं विवाहादि शुभ कार्यों के लिए ग्राह्य) मानना पड़ता है। संसर्प को शुद्ध एवं कर्मार्ह बतलाने वाले वाक्य इसी (अव्यवहित) संसर्प पर प्रवृत्त होते

हैं। इस प्रकार, "संसर्पाशुद्धिपक्ष" के समर्थक मीमांसक इन परस्पर विरोधी वाक्यों का समन्वय करते हैं।

उपरोक्त मीमांसा के आधार पर "संसर्पाशुद्धिपक्ष" के अनुसार केवल व्यवहित संसर्प की स्थिति में ही क्षयमास मासद्वयात्मक बनता है, अव्यवहित संसर्प की स्थिति में नहीं।

अब हम "संसर्पाशुद्धिपक्ष"पाती मीमांसकों द्वारा की गई उपरोक्त व्यवस्था के औचित्य की परीक्षा ज्योतिश्शास्त्र एवं धर्मशास्त्र के आधार पर करेंगे—

"तत्त्वनिर्णय के लिए परस्पर विरोधी सभी वाक्यों का समन्वय होना ही चाहिए, कोई एक भी शास्त्रवाक्य निरर्थक (निरवकाश) न हो, उसे कहीं न कहीं सावकाश होना ही चाहिए"—इस प्रकार की तर्कच्युत धारणा बना कर व्यवस्था के लिए प्रवृत्त होने वाले ये मीमांसक लोग अनेकदा मूलभूत निर्णायक तत्त्व को उपेक्षित कर (अथवा मूलभूत निर्णायक तत्त्व के अज्ञान के कारण) एकमात्र शाब्दिक अर्थ के विश्लेषण पर ही बल देते हुए अर्थ का अनर्थ कर डालते हैं। ऋषियों, आचार्यों में प्रकृतिसिद्ध वैमत्य को ये लोग आभासमात्र मानते हैं—यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है। एक ही ऋषि या आचार्य के विभिन्न वाक्यों में वैमत्य लक्षित होने पर उन्हें समन्वित करने का प्रयास तो प्रशस्य हो सकता है, लेकिन भिन्न-भिन्न ऋषियों, आचार्यों के परस्पर विरोधी विभिन्न वाक्यों को एकार्थपरक मान कर उन्हें यथा-तथा समन्वित करने का उनका प्रयास सर्वदा प्रशस्य नहीं।

संसर्प और क्षयमास के विषय में ऋषियों के परस्पर विरोधी

वाक्य-समुच्चय की व्यवस्थापन-प्रक्रिया में इन मीमांसकों ने वे अद्भुत परिणाम प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया है, जो प्रकृत प्रतिपाद्य विषय के मूलभूत निर्णायक शास्त्र "ज्योतिष" की बुरी तरह अवहेलना करते हैं, और पंचाङ्ग की व्यावहारिकता की भी वे चिन्ता नहीं करते। मीमांसकों ने संसर्प की शुद्धि-अशुद्धि एवं क्षयमास की मासद्वयात्मकता सम्बन्धी जो उपरोक्त व्यवस्था की है, उसमें उनका एकमात्र उद्देश्य यही रहा है कि परस्पर विरोधी जितने भी वाक्य उपलब्ध हैं, उन्हें यथा-तथा सावकाश बनाया जाए। इस प्रकार के महान् आग्रह के वशंवद इन विद्वानों ने इस विवादास्पद विषय के मुख्यतम निर्णायक ज्योतिश्शास्त्रीय पक्ष पर तो तनिक भी दृष्टि-पात नहीं किया, जिससे इनकी इस व्यवस्था से नितान्त हास्यास्पद परिणाम प्राप्त होते हैं।

ध्यान रहे—क्षयमास से सम्बद्ध सभी समस्याओं का एकमात्र मूलकारण 'एक ही वर्ष में गणित से प्राप्त होने वाली दो असंक्रान्तमासों की घटना' है। सामान्य नियमानुसार असंक्रान्तमास को अधिकमास (षष्टि-तिथ्यात्मकमास) माना जाता है, लेकिन 'अधिमासोत्पत्ति-सिद्धान्त' के अनुसार एक ही वर्ष के भीतर दो षष्टि-तिथ्यात्मक मास उपपन्न नहीं होते—यही मूलभूत समस्या है। इस समस्या का समाधान जाबालि- पराशर आदि ऋषियों एवं निबन्धकारों ने स्पष्ट रूप में यह कह कर किया है, कि इन असंक्रान्तमासों में से केवल क्षयोत्तरवर्त्ती असंक्रान्तमास ही वास्तव (कालाधिक्यजन्य) अधिमास है, पूर्ववर्त्ती सर्वथा नहीं।

इसी आधार पर क्षयोत्तरवर्त्ती असंक्रान्त मास ही षष्टितिथ्यात्मक माना जाना चाहिए, क्षयपूर्ववर्त्ती नहीं, अतः क्षयमास सर्वदा एकमासात्मक ही है।

इस में सन्देह नहीं— क्षयमास को मासद्वयात्मक बतलाने वाले वाक्य भी मिलते हैं, लेकिन हमें यह देखना है कि— संसर्प के अधिमासत्व को क्या किसी भी स्थिति में "अधिमासोत्पत्ति सिद्धान्त" स्वीकार करता है? हम पृष्ठ १७ से २७ तक सप्रमाण बतला चुके हैं— संसर्प चाहे वह व्यवहितपूर्व है या अव्यवहितपूर्व, दोनों स्थितियों में कालाधिक्याभाव के कारण अधिकमास नहीं हो सकता। जाबालि आदि ऋषियों के शतप्रतिशत एतत्सम्बन्धी वाक्य भी व्यवहिताव्यवहितनिरपेक्ष हो कर संसर्पमात्र को शुद्ध, अनधिकमास बतला रहे हैं। स्पष्ट है—जाबालि आदि ऋषियों एवं "अधिमासोत्पत्तिसिद्धान्त"— दोनों में पूरा समन्वय है, अतः यही पक्ष सिद्धान्तरूप में ग्राह्य होना चाहिए। यहां "संसर्पाशुद्धिपक्ष"धरों का यह कहना युक्ति-युक्त नहीं है कि—व्यवहित संसर्प को इस लिए मासिक कृत्यों के लिए अग्राह्य समझते हैं कि उसका शुद्ध (निज) मास उपलब्ध है। जब अनधिकमासत्व का हेतु कालाधिक्याभाव व्यवहितपूर्व और अव्यवहितपूर्व दोनों संसर्पों में समानरूप से विद्यमान है, तब व्यवहित संसर्प को अधिकमास अशुद्ध मानना "अधिमासोत्पत्ति सिद्धान्त" के सर्वथा विरुद्ध है। क्योंकि कालाधिक्याभाव के कारण व्यवहित संसर्प अनधिमास होने से त्रिंशत्तिथ्यात्मक ही है, अतः उसके शुद्ध (निज) मास की कल्पना "शशकशृङ्ग" कल्पना ही है।

जब व्यवहितपूर्व, अव्यवहितपूर्व—दोनों प्रकार के संसर्प

त्रिशत्तिथ्यात्मक ही है तब उनके मासिक कृत्य उन्हीं में अनुष्ठित होंगे ही। इससे यह भी अनुवृत्त है कि क्षयमास प्रत्येक स्थिति में एकमासात्मक ही होगा, क्योंकि संसर्प के षष्टितिथ्यात्मक होने पर ही क्षयमास मासद्वयात्मक बनता है।

यहां पर मीमांसक लोग आपत्ति उठा सकते हैं कि— कि क्षयमास को मासद्वयात्मक बतलाने वाले वाक्य हमारी इस व्यवस्था से निरवकाश हो रहे हैं, यह मीमांसाविरुद्ध है। उत्तर इस प्रकार है— या तो 'अधिमासोत्पत्ति सिद्धान्त' को हमें रद्दी की टोकरी में फैंकना पड़ेगा, अथवा क्षयमास को मासद्वयात्मक बतलाने वाले वाक्यों को।

यहां हमें यह ध्यान में रखना होगा कि संसर्प का अधिमासत्व या अनधिमासत्व ही यहां निर्धार्य विषय है और अधिमासोत्पत्तिसिद्धान्त ही इसका एकमात्र निर्धारक है। अतः यहां पर हमें अधिमासोत्पत्तिसिद्धान्त को प्राथमिकता देनी होगी (अथवा यूं कहिए— अधिमासोत्पत्ति सिद्धान्त की यहां उपेक्षा नहीं की जा सकती)। इसलिए "संसर्पाशुद्धिपक्ष" और "संसर्पशुद्धि पक्ष"—दोनों में से जो पक्ष अधिमासोत्पत्तिसिद्धान्त से पूर्ण समन्वय रखता है, उसी पक्ष को सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करना तर्कसंगत है। स्पष्ट है— "संसर्पशुद्धिपक्ष" ही अधिकमासोत्पत्तिसिद्धान्त से पूर्ण समन्वय रखता है अतः यही पक्ष यहां सिद्धान्त है। एतदनुसार मासयुगलीकरण का निर्देश करने वाले सभी वाक्य हमें छोड़ देने होंगे, क्योंकि ये वाक्य आंशिकरूप से अधिमासोत्पत्तिसिद्धान्त का तिरस्कार करते हैं[१]।

---

१. मासयुगलीकरण का निर्देश करने वाले ये वाक्य मीमांसकों की दृष्टि में अव्यवहित संसर्प को ही अनधिकमास स्वीकार करते हैं, जबकि व्यवहित संसर्प भी उपपत्त्या अनधिकमास है।

यदि हम मासयुगलीकरण के इन वाक्यों का तिरस्कार नहीं करेंगे तब ज्योतिषशास्त्र के अधिमासोसिद्धान्त का तिरस्कार होगा और उन "सूर्यसिद्धान्त" आदि आर्ष ग्रन्थों का तिरस्कार भी होगा जो संसर्पमात्र को अनधिकमास मानते हैं।

अधिमासोत्पत्तिसिद्धान्त का तिरस्कार सह्य नहीं है; क्योंकि इस मासयुगलीकरण से हमारा पंचाङ्ग नितान्त विकृतरूप ग्रहण कर लेता है, हजारों वर्षों की परम्परा से चला आ रहा व्रत-पर्वों का क्रम बुरी तरह बिगड़ जाता है, मासद्वयात्मक क्षयमास में कृष्ण-शुक्ल पक्षों का क्रम उलट जाता है—इत्यादि अनेक असह्य अनियमिताएं इससे उत्पन्न हो जाती हैं, जिनका विस्तारपूर्वक निर्देश हम यहां नीचे कर रहे हैं—

क्षयमास को मासद्वयात्मक मानने पर अव्यवस्थाएं

माघ क्षय (मकर-कुम्भ-संक्रान्तियुक्त) मास[1] को मासद्वयात्मक (पौष-माघ) मानने पर पौष-माघ के व्रत-पर्वों में निम्नांकित अव्यवस्थाएं उत्पन्न होती हैं[2]—

(१) संकट हरिणी (संकट चतुर्थी) व्रत वसन्तपञ्चमी से १४ दिन बाद पड़ेगा, जबकि वह वसन्तपञ्चमी से १६ दिन पहिले पड़ा करता है।

---

१. ध्यान रहे—कुछ लोगों ने मकर-कुम्भ-संक्रान्तियुक्त मास को पौषक्षय लिखा है जो गलत है, इस बारे में अपने मत का प्रतिपादन हम आगे चल कर करेंगे।

२. सं. २०३६ में माघ क्षय है, अतः इस वर्ष के उन सभी पंचाङ्गों में ये अव्यवस्थाएं हैं, जिन्होंने मासयुगलीकरण को माना है— उन सभी पंचाङ्गों को उठा कर देखिए।

(२) श्री गुरुगोबिन्दसिंहजी का जन्मदिन वसन्तपञ्चमी के दो दिन बाद आएगा जबकि परम्परया वह वसन्त-पञ्चमी से २७-२८ पहिले मनाया जाता है।

(३) श्री गुरुरविदासजी का जन्मदिन श्री गुरुगोबिन्द-सिंहजी के जन्मदिन से केवल ८ दिन बाद ही आ पड़ेगा, जब कि परम्परया वह १ महीना ८ दिन बाद आया करता है।

माघस्नान का लोप

(४) पौषपूर्णिमा और माघपूर्णिमा दोनों एक ही तिथि को आ पड़ेंगी, क्योंकि माघस्नान पौषपूर्णिमा को प्रारम्भ हो कर माघपूर्णिमा को समाप्त होता है, अतः माघक्षय होने पर मासयुगलीकरण वालों के अनुसार माघस्नान, जोकि एक मास तक चलता है, उसी दिन प्रारम्भ हो कर उसी दिन समाप्त हो जाएगा।

सं. २०३९ में यही स्थिति है, वहां एक मासपर्यन्त चलने वाला यह माघस्नान माघक्षयमास को मासद्वयात्मक मानने वाले (अर्थात् आश्विन संसर्प को अधिकमास मानने वाले) पंचाङ्गों में केवल एक ही दिन का बन कर रह गया है, क्योंकि उन पंचाङ्गों में जो पौषपूर्णिमा है वही माघपूर्णिमा भी है। लेकिन मासयुगलीकरण के समर्थक चतुर मीमांसकों ने माघस्नान सम्बन्धी सभी शास्त्रवाक्यों एवं परम्परा की अवहेलना करके माघस्नान को एक मास तक चलाने के लिए मासयुगलीकरण के

अनुयायी पंचाङ्गकारों को परामर्श दिया कि मार्गशीर्ष पूर्णिमा से माघस्नान का आरम्भ करके उसे पौष पूर्णिमा पर समाप्त करो। मासद्वयात्मक पक्ष के अनुयायी सभी पंचाङ्गकारों ने उनका निर्देश स्वीकार कर लिया। उनके पंचाङ्ग उठा कर देखिए— उन्होंने माघस्नान का आरम्भ मार्ग.पूर्णिमा से किया है और समाप्ति क्षयमास की पूर्णिमा को की है। यह व्यवस्था स्पष्ट रूप से शास्त्रोल्लंघन है, इसमें निम्नांकित अनेक दोष हैं—

(१) माघस्नान का आरम्भ कहीं भी मार्ग-पूर्णिमा को नहीं लिखा है, सभी शास्त्रों में इसकी प्रारम्भ की तिथि परम्परानुसार पौषशुक्ल की एकादशी, पूर्णिमा या शुक्लादि पौषकी अमा. लिखी है। धर्मसिन्धु का वचन है—

तत्र पौषस्य शुक्लैकादश्यां पौर्णमास्याम् अमावास्यायां वा माघस्नानारम्भः।

"स्मृतिमुक्ताफल" में वैद्यनाथदीक्षित द्वारा उद्धृत यह विष्णुवाक्य भी यही बतलाता है—

पौष-फाल्गुनयो र्मध्ये प्रातः स्नायी सदा भवेत्।
दर्शं वा पौर्णमासीं वा प्रारभ्य स्नानमाचरेत्॥

(२) "माघस्नान" शब्द ही बतला रहा है कि यह स्नान माघमास (माघकृष्ण और माघशुक्ल पक्षों) से ही सम्बन्ध रखता है, यह स्नान माघकृष्ण और माघशुक्ल दोनों पक्षों में ही अनुष्ठित होना चाहिए, अन्यत्र नहीं। ऊपर उद्धृत विष्णुवाक्य ('पौष-

फाल्गुनयो र्मध्ये प्रातःस्नायी सदा भवेत्')
भी स्पष्ट शब्दों में कह रहा है कि माघस्नान पौष
और फाल्गुन—इन दो मासों के मध्य रहने वाले
मास माघमास में ही करना चाहिए। माघस्नान
के संकल्प का निम्नांकित वाक्य भी साफ-साफ कह
रहा है, कि "माघस्नान" पूरे माघमास में किया
जाता है—

'माघमासमिमं पूर्णं स्नास्येऽहं देवमाधव।
तीर्थस्यास्य जले नित्यम्...........॥'

विष्णु का ही वाक्य है—

'माघमास्युषसि स्नात्वा विष्णुलोकं स
गच्छति।'

परन्तु सं. २०३९ के उन सभी पंचाङ्गों में, जिन्होंने
आश्विन संसर्प को अधिकमास मान कर माघक्षय-
मास को मासद्वयात्मक बना डाला है, माघस्नान
का प्रारम्भ मार्ग-पूर्णिमा से किया है और इसकी
समाप्ति माघपूर्णिमा (जो उनके मत से पौष-
पूर्णिमा भी है) को की है। स्पष्ट है— उनका माघ-
स्नान पूरे माघमास (माघकृष्ण, माघशुक्ल दोनों
पक्षों) को व्याप्त नहीं करता है। वह केवल पौष
कृष्ण और माघशुक्ल (जो उनका पौषशुक्ल भी है)
—इन दो पक्षों को ही व्याप्त किए हुए है। उनका
माघकृष्ण इस माघस्नान से सर्वथा बहिर्भूत है,

क्योंकि उनके मतानुसार माघकृष्णपक्ष का समावेश प्रथम फाल्गुन कृष्ण में ही किया गया है, और यह प्रथमफाल्गुन कृष्णपक्ष उनके पंचाङ्गों में माघ शुक्ल के अनन्तर आता है—यह एक अक्षम्य अनियमितता है इन पंचाङ्गों में। इस प्रकार सं. २०३९ में माघक्षयमास को पौष और माघमासों का मिश्रण मानने वाले इन सभी पंचाङ्गों में "माघ-स्नान" का पर्व केवल आधे माघमास (माघशुक्ल पक्ष) में ही रहता है, इसका शेष भाग पौषकृष्ण में चला गया है। इस तरह माघकृष्णपक्ष माघ-स्नान से सर्वथा बहिर्भूत कर दिया है इन मीमांसकों की दोषपूर्ण व्यवस्था ने, जिसके परिणाम-स्वरूप इनके मतानुसार सं. २०३९ में "माघ स्नान" माघमास का स्नान नहीं रहा। 'माघमास-मिमं पूर्णम्......' इस संकल्पवाक्य में "माघ-मासम्" यहां द्वितीया का प्रयोग 'कालाध्वनो-रत्यन्तसंयोगे' सूत्रानुसार पूरे माघमास में अन-वच्छिन्नरूप से माघस्नान की व्याप्ति का निर्देश कर रहा है, लेकिन स्पष्ट है— मासयुगलीकरणानुसार माघस्नानपर्व पूरे माघमास को व्याप्त नहीं कर सका।

(३) माघस्नान पर्व में माघी अमा. का बहुत बड़ा माहात्म्य है, इसे माघस्नान से बहिष्कृत नहीं किया जा सकता, यही कारण है— दूसरी परम्परा के अनुयायी लोगों (जो माघी अमा. से ही माघस्नान

का प्रारम्भ करते हैं) ने भी माघी अमा. को अपने माघस्नान की अवधि से बाहिर नहीं जाने दिया। प्रयाग, हरिद्वार आदि तीर्थस्थलों में माघी अमा. (मौनी अमा.) का स्नान विशेष माहात्म्याधायक माना जाता है। यह स्नान माघस्नान का ही एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। प्रयाग में त्रिवेणी संगम पर माघ में स्नान करने का विशेष माहात्म्य शास्त्रों में वर्णित है—

'दुर्जया वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्त्यजा ।
प्रयागे दह्यते साऽपि माघमासि नराधिप ॥'

(पद्मपुराण)

इस विष्णु वचन में भी प्रयाग में स्नान का माहात्म्य माघमास में ही लिखा है, मासयुगलीकरणानुसार माघका आधा भाग (माघकृष्ण) इस माघस्नान से बाहिर चला गया है, और पौषकृष्णपक्ष (जिसे दूसरी परम्परा वाले भी "माघस्नान" का अङ्ग नहीं मानते) माघस्नान में समाविष्ट हो गया है।

प्रयाग का कुम्भपर्व भी माघस्नान का ही एक विशेष रूप है। इस पर्व का विशेष(मुख्य)स्नान-दिवस भी मौनी अमा. (माघी अमा.) है। यदि कभी प्रयागकुम्भ वाले वर्ष में माघक्षय हुआ तो इन मीमांसकों की व्यवस्थानुसार माघकृष्ण पक्ष और मौनी अमा. (कुम्भपर्व का प्रमुखस्नानदिन) माघस्नान की समाप्ति के बाद आएंगे।

माघमास का शुक्लपक्ष पहिले और कृष्णपक्ष बाद में

(४) जैसा कि ऊपर बतला चुके हैं, मासयुगलीकरण के कारण माघक्षय की स्थिति में माघमास के कृष्ण और शुक्लपक्षों का क्रम उलट जाता है, अर्थात् —माघशुक्लपक्ष पहिले और माघकृष्णपक्ष वहां बाद में घटित होता है। जबकि माघकृष्ण पहिले और माघशुक्लपक्ष बाद में आना चाहिए। सं. २०३९ के मासयुगलीकरण वाले पंचाङ्ग उठा कर देखिए—इनमें ता. १५-१-८३ से ता. २८-१-८३ तक माघशुक्ल (जिसमें पौषशुक्ल भी इनके मत से समाविष्ट है) और ता. २९-१-८३ से ता. १२-२-८३ तक प्रथम फाल्गुनकृष्ण (जिसमें माघकृष्णपक्ष भी इनके मत से समाविष्ट है) माना गया है। स्पष्ट है—यहां माघशुक्ल पहिले और माघकृष्ण बाद में आया है कितनी "विलक्षण" स्थिति है। यह तो ठीक वैसे ही हास्यास्पद है, जैसे कि अंग्रेजी कैलेण्डर में किसी अंग्रेजी मास की १६ से ३० तक की तारीखें पहिले लिखी हों और १ से १५ तक की तारीखें बाद में। इस व्यवस्था को मीमांसक शास्त्रीय मीमांसा कहते हैं— कितने आश्चर्य की बात है। यहां माघ का पूर्वार्ध उत्तरार्ध बन गया है और उत्तरार्ध, पूर्वार्ध, जिससे माघमास के अनेक व्रत-पर्वों को प्रारम्भ और समाप्त करना एक समस्या बन गया है। जैसे—यदि कोई पर्व या व्रत माघकृष्ण की किसी तिथि को प्रारम्भ हो कर माघशुक्ल की किसी

तिथि को समाप्त होने वाला हो[1] वहां असमाधेय समस्या उत्पन्न होगी, क्योंकि इस स्थिति में उस पर्व की समाप्ति-तिथि उसकी प्रारम्भ-तिथि से पहिले आ रही है।

ध्यान रहे— शुक्ल और कृष्णपक्षों के पौर्वापर्य में मासयुगलीकरण से यह व्यत्यय अन्य मासों (कार्त्तिकादि) के क्षय होने पर उनमें भी प्रवृत्त होगा, जो अनेकत्र भारी समस्याएं उत्पन्न करेगा, इनमें से कुछ की चर्चा हम आगे चल कर करेंगे।

(५) माघक्षय को मासद्वयात्मक मानने से सं. २०३९ में मौनी अमावस्या शिवरात्रि के एक दिन बाद आ रही है, जब कि परम्परया वह शिवरात्रि से लगभग २८-२९ दिन पहिले ही आया करती है।

इस प्रकार की अनेक अव्यवस्थाएं मासद्वयात्मक पक्ष से वर्त्तमान रविमन्दोच्च की स्थिति में उत्पन्न होती हैं। हम क्षयमास की मासद्वयात्मकता से भविष्य में रविमन्दोच्चचलनवश उत्पन्न होने वाली कुछ अन्य अव्यवस्थाओं का यहां निर्देश करेंगे—

क्योंकि रविमन्दोच्च की दृक्सिद्ध शुद्ध गति प्रतिवर्ष ११ विकला से कुछ अधिक है, अतः इसी कलियुग में रविमन्दोच्च लगभग ४६ राशि आगे चलेगा। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि रविमन्दोच्च इस कलियुग में राशिचक्र के लगभग

१. कृष्णपक्ष की किसी तिथि को प्रारम्भ हो कर शुक्लपक्ष की किसी तिथि को समाप्त होने वाले अनेक प्रान्तीय तथा अन्य पर्व भारत में प्रचलित हैं।

४ भ्रमण कर लेगा। इससे गणित द्वारा पता चलता है कि हमारे इसी युग में प्रत्येक चान्द्रमास के द्विसंक्रान्त(क्षय) होने का काल लगभग १ लाख २० हजार वर्ष है। अर्थात्—इस कलियुग में क्रमशः प्रत्येक चान्द्रमास १ लाख २० हजार वर्ष तक द्विसंक्रान्त होने की स्थिति में रहेगा। जबकि इसी युग में सभी चान्द्रमास क्षयमास हो सकते हैं, तब दूसरे शब्दों में मासयुगलीकरण के अनुयायियों के मतानुसार ये सभी चान्द्रमास मासद्वयात्मक भी होंगे। कई क्षयचान्द्रमासों को मासद्वयात्मक मानने से बहुत ही विचित्र परिणाम हमें प्राप्त होते हैं, जिन्हें हम यहां निर्दिष्ट कर रहे हैं—

(१) जब कभी शुक्लादि भाद्रपद और शुक्लादि आश्विन, दोनों मास एक क्षयमास में समाविष्ट होंगे तब—

(i) श्राद्धपक्ष में करवाचौथ और दीवाली माननी पड़ेगी, क्योंकि तब जो कृष्णादि आश्विनकृष्ण होगा, वही कार्त्तिककृष्ण भी होगा।

(ii) नवरात्र और विजयादशमी श्राद्धों से पहिले आ जाएंगे।

(२) जब कभी शुक्लादि आश्विन और शुक्लादि कार्त्तिक मास एक क्षयमास में समाविष्ट किए जाएंगे तब—

(i) अन्नकूट, गोवर्धनपूजा और भाईदूज दीवाली से ३० दिन पहिले ही मनाने पड़ेंगे।

(३) जब कभी मासद्वयात्मक क्षयमास में शुक्लादि फाल्गुन और शुक्लादि चैत्र— ये दो मास समाविष्ट किए जाएंगे तब—

(i) होलिका दहन, रामनवमी के छः दिन बाद पड़ेगा।

(ii) रामनवमी व्रत होलाष्टक में होगा।

(iii) विगत संवत्सर की समाप्ति बाद में होगी और आगामी संवत्सर का प्रारम्भ उससे (विगत संवत्सर के समाप्ति-दिन से) ३० दिन पहिले ही हो जाएगा। तब उस द्विसंक्रान्तमास में प्रतिदिन आगामी और विगत— दोनों संवत्सर मानने पड़ेंगे।

ये सभी विचित्रात् विचित्रतर अव्यवस्थाएं मासयुगलीकरण सिद्धान्त को नितान्त अवैज्ञानिक एवं अव्यावहारिक सिद्ध करती हैं।

"तत्त्व निर्धारण" के लिए सभी प्रकार के परस्परविरोधी वाक्यों को निरपवादरूप से सावकाश मानने के अतर्कप्रतिष्ठ आग्रह पर तुले हुए कुछ मीमांसकों की बुद्धि की एक विचित्रतम उपज की हम यहाँ चर्चा करने जा रहे हैं—

मासयुगलीकरण सिद्धान्त में क्षयमास की प्रत्येक तिथि को

दोनों मासों की तिथि मान कर उसे एक ही तिथि में उन दोनों मासों के व्रतपर्व और श्राद्ध आदि का अनुष्ठान करना चाहिए— यह मासयुगलीकरण के समर्थक मीमांसकों का मत है[1]। लेकिन एक ऐसा वाक्य भी निबन्धग्रन्थों में उद्धृत किया मिलता है जो क्षयमास में दो मासों के मिश्रण को और ही पद्धति से निर्दिष्ट करता है। इस पद्धति से क्षयमास में दो मासों की तिथियों का विभाजन पूर्वोक्त मासयुगलीकरण पद्धति से सर्वथा भिन्न है। वह वाक्य यह है—

तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वः प्रथमेऽर्धे तथोत्तरः।
मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ क्षयमासस्य मध्यगौ॥

(अर्थात्—क्षयमास की तिथि के पूर्वार्ध में पहिले मास की और उत्तरार्ध में दूसरे मास की तिथि समझनी चाहिए।)

इस वाक्य के अनुसार सं. २०३९ के माघक्षयमास की शुक्लप्रतिपदा के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध को क्रमशः माघशुक्ल प्रतिपदा और पौषशुक्ल प्रतिपदा माना जाएगा, इसी प्रकार शेष तिथियां भी समझनी चाहिएं।

उपरोक्त वाक्य मासयुगलीकरण के पूर्वप्रतिपादित नियम से मेल नहीं खाता—यह स्पष्ट है। इस वाक्य के अनुसार एक तिथि का मान ३३½ घड़ी से कभी ज्यादा नहीं होगा, जिससे इसका अनुसरण करने पर क्षयमासगत दो मासों के अनेक व्रत-

---

१. मासयुगलीकरण के अनुसार सं. २०३९ में माघशुक्ल की प्रतिपदा, द्वितीया आदि के जो प्रारम्भ और समाप्ति काल हैं ठीक वही पौषशुक्ल की प्रतिपदा, द्वितीया आदि के भी हैं। इसी प्रकार कृष्णादि माघकृष्ण और कृष्णादि प्रथम फाल्गुन कृष्ण की तिथियों के प्रारम्भ और समाप्ति काल भी एक ही हैं।

पर्वों का निर्णय कर सकना अनेकदा सम्भव नहीं होगा, क्योंकि इतने कम मान वाली तिथि कई बार दोनों दिन व्रत-पर्व के लिए निर्धारित काल को व्याप्त करने में असमर्थ होगी और वह (यह बहुत सम्भव है) अनेकदा पूर्वविद्धा और परविद्धा भी न हो सकेगी। जिसके फलस्वरूप उस तिथि से सम्बद्ध व्रत-पर्व का लोप ही हो जाएगा। यही बात श्राद्ध के बारे में भी है— वह अत्यल्पमान वाली तिथि कई बार सम्भव है, दोनों दिन मध्याह्न, अपराह्ण, सायाह्न कालों को स्पर्श ही न करें, जिससे उस तिथि का एकोद्दिष्ट एवं पार्वण श्राद्ध भी लुप्त हो जाएगा। इस प्रकार "तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वः......" यह वाक्य निरर्थक सिद्ध हो जाता है। स्पष्ट है— इस वाक्य (पद्य) के प्रवर्त्तक की बुद्धि में इस प्रकार के तिथिविभाजन से व्रत-पर्व-श्राद्ध आदि के लोपप्रसंग की बात आई ही नहीं। यह वाक्य निश्चितरूप में सहसा (अविमृश्य) लिखा गया है। यह वाक्य स्पष्टतः अर्थहीन हैं।

लेकिन मीमांसक लोग, जो किसी भी प्रकार के उपलब्ध वाक्य को सावकाश (सार्थक) बनाने की भीष्मप्रतिज्ञा लिए हुए हैं, इस बेहूदा निरुपपत्तिक वाक्य की सुरक्षा के लिए भी मैदान में उतर आए और विषयभेद से इसकी व्यवस्था का उन्होंने प्रयास किया। "क्षयमास में मरने और जन्म लेने वालों की मृत्युतिथि और जन्मतिथि के निर्णय के लिए इस वाक्य को प्रयोग में लाया जाए"— यह उन्होंने व्यवस्था दी। उदाहरणार्थ —इस व्यवस्था के अनुसार सं. २०३९ के क्षयमास की शुक्ल प्रतिपदा के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में पैदा होने वाले व्यक्तियों की जन्मतिथियां क्रमशः पौषशुक्ल प्रतिपदा और माघशुक्ल

प्रतिपदा होंगी। इसी प्रकार मृत्युतिथि का भी निर्णय करना होगा।

यह कितनी बलात्कृत व्यवस्था है, जिसकी पुष्टि में किसी भी प्रकार का कोई प्रमाण नहीं है। इस वाक्य ने तिथि की परिभाषा को बुरी तरह रद्दी की टोकरी में फेंक दिया है। पंचाङ्ग की व्यवहारयोग्यता को समाप्त कर दिया है। इसके अनुसार ३० दिन तक प्रतिदिन लगभग ३०-३० घड़ी के लिए दोनों मास क्रमशः बार-बार आते-जाते हैं, पंचाङ्ग क्या है, एक मज़ाक बन गया है इस व्यवस्था से। इन व्यवस्थापक मीमांसकों से यह तो पूछिए— "जन्म और मृत्यु की तिथि के निर्णय के लिए यह वाक्य है— इसमें शास्त्रीय प्रमाण क्या है ? मूल वाक्य में तो जन्म-मरण का नाम तक नहीं, फिर भी ऐसी व्यवस्था करने में क्या तर्क है ?" उनका अपनी इस व्यवस्था के समर्थन में एकमात्र तर्क यही है कि ऐसी व्यवस्था स्वीकार न करने से यह बेचारा वाक्य सावकाश न रहता, जबकि मीमांसा के सिद्धान्त के अनुसार किसी भी वाक्य को निरवकाश नहीं रहने देना चाहिए। देखिए—कितना बेहूदा "तर्क" है यह।

इस वाक्य की उपरोक्त व्यवस्था तथा इस वाक्य के इन निम्नांकित कुपरिणामों पर तो जरा दृष्टिपात कीजिए, आपको यह समझते देर नहीं लगेगी कि इस वाक्य के लेखक और इस की व्यवस्था देने वाले मीमांसक महोदय कितनी तर्कदृष्टि रखते हैं—

(१) ज्योतिषसिद्धान्तानुसार तिथि ज्यादा से ज्यादा ६७ घड़ी की और कम से कम ५० घड़ी की होती है, लेकिन इस वाक्य के अनुसार तिथि का

का मान ३३½ घड़ी से ज्यादा होता ही नहीं है।

(२) इस वाक्य के निर्देश का अनुसरण करने पर सं. २०३९ में माघक्षयमास में प्रतिदिन लगभग ३०-३० घड़ी के लिए पौष और माघमास ३०-३० बार आएंगे— जिस से पचाङ्ग सर्वथा अव्यावहारिक बन जाता है।

(३) इस वाक्य की उस व्यवस्था के अनुसार, जो मीमांसकों ने की है, क्षयमास की किसी तिथि के पूर्वार्ध में मरने वाले व्यक्ति का मासिक श्राद्ध उसी दिन उसी तिथि के उत्तरार्ध में कुछ ही घड़ियों-पलों अथवा एक ही पल बाद करना पड़ेगा, क्योंकि इस व्यवस्थानुसार उस तिथि का उत्तरार्ध ही अग्रिममास की वही तिथि है। परन्तु ऐसा कर सकना सम्भव नहीं है, अतः उस व्यक्ति का प्रथम मासिक श्राद्ध लुप्त हो जाएगा।

(४) किसी मास के कृष्णपक्ष में उत्पन्न व्यक्ति उसी मास के शुक्ल पक्ष में उत्पन्न व्यक्ति से बड़ा ही होना चाहिए, और भविष्य में बड़े की जन्मग्रन्थि (जन्मोत्सव) पहिले और छोटे की बाद में मनायी जानी चाहिए। लेकिन उपरोक्त व्यवस्थानुसार क्षयमास के कृष्णपक्ष की किसी तिथि के पूर्वार्ध में उत्पन्न व्यक्ति की जन्मग्रन्थि भविष्य में पहिले मनाई जाएगी और क्षयमास के शुक्लपक्ष की किसी तिथि के उत्तरार्ध में उत्पन्न व्यक्ति की बाद में। सं. २०३९ में माघक्षयमास के शुक्ल

की प्रतिपदा के उत्तरार्ध में (ता. १५-१-८३ को) उत्पन्न व्यक्ति की जन्मतिथि माघशुक्ल प्रतिपदा और क्षयमास के कृष्णपक्ष की अमा. के पूर्वार्ध में (ता. १२-२-८३ को) उत्पन्न व्यक्ति की जन्म-तिथि माघ अमा. होगी। यहां देखिए— माघ अमा. में उत्पन्न होने वाले व्यक्ति (जो वस्तुतः यहां बाद में उत्पन्न हुआ है) की जन्मग्रन्थि (वर्ष-ग्रन्थि या जन्मोत्सव) माघशुक्ल प्रतिपदा में उत्पन्न व्यक्ति (जो वस्तुतः पहिले उत्पन्न हुआ है) की जन्म-ग्रन्थि से आगामी वर्षों में एक दिन पहिले मनाई जाएगी। क्योंकि माघी अमा. माघशुक्ल प्रतिपदा से एक दिन पहिले ही हर वर्ष पड़ती है।

यही अनियमितता उपरोक्त व्यवस्थानुसार क्षयमास में मरे व्यक्तियों के श्राद्धानुष्ठान में भी होगी, अर्थात् पहिले मरे व्यक्ति का वार्षिक श्राद्ध बाद में करना होगा और बाद में मरे व्यक्ति का पहिले करना पड़ेगा।

इस प्रकार की बीसों अनियमितताएं इस व्यवस्थानुसार उत्पन्न होंगी (पाठक स्वयं विचार करें)।

कहने का सार यह है— किसी भी प्रत्यक्षतः निरुपपत्तिक एवं अर्थहीन वाक्य को भी निरवकाश घोषित करना मीमांसासिद्धान्त के प्रतिकूल है अतः स्वतःप्रमाण मान कर ये मीमांसक महोदय येन-केन प्रकारेण खींचातानी करके कहीं न कहीं उन वाक्यों की सावकाशता के आपादन को व्यवस्था का नाम देने लगते हैं। ऐसा करते हुए अनेक मूलभूत सिद्धान्त

धराशायी हो जाते हैं— इस बात की वे मीमांसक तनिक भी परवाह नहीं करते—यह दुःख की बात है।

'मासयुगलीकरण' पक्ष उपरिनिर्दिष्ट पचासों ऐसी पंचाङ्गसम्बन्धी अव्यवस्थाओं को जन्म देता है, जो ज्योतिषसिद्धान्त का स्पष्ट उल्लंघन करती हैं, परम्पराप्राप्त अनेक व्यवस्थाओं को बुरी तरह उच्छिन्न कर डालती हैं, मासों के पक्ष एवं तिथियों के परिभाषित क्रम में भारी व्यत्यय इससे पैदा होता है, जिससे सर्वसाधारण व्यक्ति पदे-पदे भ्रान्त हो जाता है। क्षयमास को एक मासात्मक (संसर्प को अनधिकमास) मानने पर इस प्रकार की कोई एक भी ऐसी अव्यवस्था उत्पन्न नहीं होती। परम्पराप्राप्त सभी पंचाङ्गसम्बन्धी नियम पूरी तरह सुरक्षित रहते हैं— क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि संसर्प को प्रत्येक स्थिति में शुद्ध, कर्मार्ह, अनधिकमास मानना ही एकमात्र व्यवस्था है, 'मासयुगलीकरण' वाली व्यवस्था तो स्पष्टतः अव्यवस्थामात्र है ?

एक और बात यहां ध्यान देने योग्य है—"तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वः......" यह वाक्य किस ऋषि या आचार्य का है, किस ग्रन्थ से यह उद्धृत किया गया है— यह निर्देश कालमाधव, पुरुषार्थचिन्तामणि, निर्णयसिन्धु, स्मृतिमुक्ताफल आदि किसी भी निबन्धग्रन्थ में नहीं किया गया है। कुछ निबन्धग्रन्थों में इस वाक्य को हेमाद्रि के "कालनिर्णय" से उद्धृत लिखा है, लेकिन

"कालनिर्णय" में भी इस वाक्य के स्रोत (Origin) का निर्देश नहीं है। इससे भी इस वाक्य की प्रामाणिकता पूरी तरह सन्देहास्पद है। यही बात "निर्णयसिन्धु" के भाष्य में मीमांसक कृष्णभट्ट ने भी कही है कि यह वचन किसी ऐसे आधुनिक भ्रान्त व्यक्ति का है, जिसे क्षयमास आने पर एक मास के लोप की भ्रान्ति हो गई थी और वह उस लुप्त मास को क्षयमास में समाविष्ट करना चाहता था। श्रीकृष्णम्भट्ट का वाक्य इस विषय में इस प्रकार है—

'तिथ्यर्धवाक्यं तु एकमासलोपभ्रान्तस्य कस्यचिदाधुनिकस्यैव।'

"मुहूर्त्तचिन्तामणि" की पीयूषधारा टीका में गोविन्द ज्योतिर्वित् भी "......क्षयमासकस्तु। द्विसंक्रमस्तत्र विभागयोस्तः तिथेर्हि मासौ प्रथमान्त्यसंज्ञौ।"— की व्याख्या में "तिथ्यर्धे प्रथमे......" वचन को उद्धृत करके अन्त में इसकी प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट करते हुए कहते हैं— 'एवं यथाश्रुतोऽर्थो व्याख्यातः।'

पीयूषधारा का पूरा वाक्य इस प्रकार है—

'तिथिपूर्वार्धे जातानां मृतानां च पूर्वमासे वर्धापनं श्राद्धं च विधेयम्। तिथेरुत्तरार्धे जातानां मृतानां चोत्तरमासे वर्धापनं श्राद्धं च विधेयम्। तदुक्तम्— 'तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वः.........क्षयमासस्य मध्यगौ॥' इति। एवं यथाश्रुतोऽर्थो व्याख्यातः।

'सर्वभारतीय काशिराजन्यास रामनगर वाराणसी'

द्वारा प्रकाशित "अधिमास क्षयमास विचार" पुस्तिका में इस वाक्य को "भविष्य पुराण" का लिखा है—हमें इस पर सन्देह है। कुछ भी हो यह वाक्य उपर्यंकित अनेक सैद्धान्तिक कारणों से स्वीकार्य नहीं है।

मासयुगलीकरण से वर्ष चतुर्दशमासात्मक बन जाता है —श्रुति इसका विरोध करती है—

"मासयुगलीकरण" से चान्द्रवर्ष चतुर्दशमासात्मक भी बन जाता है[1], जोकि श्रुतिविरुद्ध है, क्योंकि श्रुति एक वर्ष में १३ मास से ज्यादा मास कभी नहीं मानती('द्वादशमासाः संवत्सरः। अस्ति त्रयोदशो मासः इत्याहुः') । इसलिए मासयुगलीकरण श्रुतिविरुद्ध है। "मासयुगलीकरण" का निवारण तभी सम्भव है जबकि संसर्प को अनधिकमास (त्रिंशत्तिथ्यात्मक) माना जाए। यही बात दृष्टि में रख कर श्रुतिविरोध के परिहार के के लिए जाबालि आदि ने संसर्प के अधिमासत्व का निषेध किया है।

इस बारे में वैद्यनाथदीक्षितीय का यह विवेचन ध्यान देने योग्य है—

ननु एकाधिमासोपेतस्य संवत्सरस्य त्रयोदशमासात्मकत्वं यथा, तथा अधिमासद्वयोपेतस्य संवत्सरस्य चतुर्दशमासात्मकत्वं प्राप्तम्। न तद्युक्तम्, 'अस्ति त्रयोदशो

१. "मासयुगलीकरण" मानने पर संसर्प और क्षयोत्तरवर्त्ती असक्रान्तमास—दोनों षष्टितिथ्यात्मक हो जाते हैं, और क्षयमास तो वहां मासद्वयात्मक होता ही है—इस प्रकार एक वर्ष में १४ मास बन जाते हैं।

मासः' इत्याहुरितिवच्चतुर्दशमासस्य अश्रूयमाणत्वात् । नैष दोषः, असंक्रान्तत्वेन अधिकत्वप्रसक्तियुक्तयोः मध्ये पूर्वस्य अधिमासत्वनिषेधात् ।

स्मृत्यन्तर का निम्नांकित वाक्य भी मासयुगलीकरण का स्पष्ट प्रतिवाद करता है—

> एकत्र मासद्वितयं यदि स्याद्
> वर्षेऽधिकं तत्र परोऽधिमासः ।
> त्रयोदशं तु श्रुतिराह पूर्वं
> चतुर्दशः क्वापि न दृष्टपूर्वः ॥

अर्थात्—एक वर्ष में यदि दो मास अधिकमास (अधिक-मासलक्षणोपेतमास) आजाएं, तब उनमें से परवर्त्ती अधिक-मास को ही अधिकमास समझना चाहिए, क्योंकि श्रुति में एक वर्ष में तेरहवें मास की तो चर्चा मिलती है, चौदहवां मास तो एक वर्ष में कहीं पहिले आज तक देखा नहीं गया।

स्पष्ट है— स्मृत्यन्तर का यह वाक्य एक वर्ष में दो अधिकमास को इस लिए स्वीकार करने के पक्ष में नहीं है क्योंकि ऐसा करने से वर्ष में चौदह मास बन जाते हैं, जोकि श्रुति-विरुद्ध है[1] । क्या इससे स्पष्टरूप में "मासयुगलीकरण" की अग्राह्यता सिद्ध नहीं होती ?

"अधिकमास षष्टितिथ्यात्मक एक ही मास है, इसलिए

---

१. अर्थात्- स्मृत्यन्तर के इस वाक्य में पूर्वार्ध द्वारा बतलाई गई बात का उत्तरार्ध द्वारा हेतूपन्यासपूर्वक समर्थन किया गया है ।

क्षयमास को मासद्वयात्मक मानने पर भी वर्ष में १४ मास नहीं, अपितु १३ ही मास होंगे"— यह कहना भी गलत होगा। ऐसा मानने से स्मृत्यन्तर का उपर्यंकित यह वाक्य असंगत हो जाएगा, जो वर्ष में दो अधिकमास मानने पर १४ मास के वर्ष की बात कह रहा है। किञ्च अधिकमास को मासद्वयात्मक न मानने पर "अस्ति त्रयोदशो मासः इत्याहुः"— यह श्रुतिवाक्य भी असंगत हो जाएगा।

इस प्रकार ज्योतिषसिद्धान्त, आर्षवाक्य, व्रतपर्वों के परम्परागत क्रम, शास्त्रनिर्दिष्ट व्रत-पर्व काल तथा सुव्यवस्थित पंचाङ्ग—इन सभी तत्त्वों की दृष्टि से संसर्पशुद्धिपक्ष तर्कनिकष पर पूरी तरह शुद्ध उतरता है, संसर्पाशुद्धिपक्ष तो तनिक भी नहीं।

'संसर्पांहस्पती मासौ सर्वकर्मबहिष्कृतौ' इत्यादि वाक्यों में 'सर्व' शब्द का वास्तव अर्थ

जैसा कि पहिले (पृष्ठ ४२) पर हम लिख चुके हैं—संसर्पाशुद्धिपक्ष वालों का कहना है कि "प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यात्", "पूर्वः मासः प्रशस्तः स्यात्" आदि वाक्यों में संसर्प के लिए प्रयुक्त किए गए प्राकृत, प्रशस्त आदि शब्दों का अर्थ कुछ स्थलों पर तो "सर्वकर्मार्हत्व"रूप एवं कुछ स्थलों पर "विवाह-यज्ञ-उत्सव एवं मंगल आदि के अतिरिक्त सर्वकर्मार्हत्व"रूप है। क्योंकि जहां संसर्प को शुद्ध कहने वाले वाक्य उपलब्ध हैं, वहां "यस्मिन् वर्षे द्विसंक्रान्तोऽधिकमासद्वयं तथा, तद्धि मासत्रयं दुष्टं सर्वेषु शुभकर्मसु" आदि (पृष्ठ ४१ पर उद्धृत) वाक्य संसर्प को सभी कार्यों के लिए त्याज्य भी कहते हैं। संसर्पाशुद्धिपक्ष वाले इन

परस्पर विरुद्धत्वेन प्रतीयमान वाक्यों को 'पदाहवनीय' (साव-काश, निरवकाश) न्याय से व्यवहितपूर्व और अव्यवहितपूर्व संसर्पभेद से व्यवस्थापित करते हैं। यहां पर उनका कहना है कि क्योंकि व्यवहितपूर्व संसर्प का शुद्ध(निज)मास पृथक् विद्यमान रहता है, अतः उस मास के मासिक व्रतपर्व आदि का अनुष्ठान उसके शुद्ध(निज)मास में ही किया जाना चाहिए, क्योंकि शुद्ध मास के होते हुए उस मास के व्रतादि का अशुद्धमास में अनुष्ठान तर्कसंगत नहीं है। इस प्रकार वे संसर्पाशुद्धिपक्ष वाले लोग व्यवहितपूर्व संसर्प को विवाह, यज्ञ, उत्सव एवं मंगल आदि के अतिरिक्त कार्यों के लिए ही प्रशस्त या ग्राह्य मानते हैं। इसके अनुसार उनके मत में व्यवहितपूर्व संसर्पमास मासिक व्रत-पर्वों के लिए ग्राह्य नहीं है। क्योंकि अव्यवहित संसर्पमास का शुद्ध(निज)मास क्षयमास में समाविष्ट होने से पृथक् अनुपलब्ध रहता है इसलिए संसर्पाशुद्धिपक्ष वाले अव्यवहित संसर्प को सर्वकर्मार्ह कहते हैं। अर्थात् उसके मत से प्राकृत आदि शब्द अव्यवहित संसर्प के विषय में सर्वकर्मार्हरूप अर्थ रखते हैं। इस के अनुसार वे संसर्पमास के मासिक व्रत-पर्वों को अव्यवहित संसर्प में ही करने के पक्ष में हैं। इस प्रकार संसर्प की ग्राह्यता (शुद्धता) के विषय में उपलब्ध होने वाले परस्पर विरोधित्वेन प्रतीयमान वाक्यों का समन्वय उन्होंने किया है। संसर्पाशुद्धि पक्ष वालों का यह समन्वय युक्तियुक्त नहीं है। निम्नांकित तर्क एवं प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है कि व्यवहितपूर्व और अव्यवहितपूर्व—दोनों संसर्प समानरूप से शुद्ध (मासिक व्रत-पर्व आदि के लिए ग्राह्य) हैं—

जैसा कि पहिले पृष्ठ १७ पर हम बतला चुके हैं— सभी

संहिता, स्मृति एवं निबन्धकारों ने संसर्पमात्र को शुद्ध, कर्मार्ह एवं अनधिकमास कहा है, सूर्यसिद्धान्त आदि आर्षसिद्धान्त ग्रन्थों में भी व्यवहित एवं अव्यवहित— दोनों प्रकार के संसर्पों की अधिकमास में गणना नहीं की है।

पृष्ठ १७ पर हम बतला चुके हैं—क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्त मास कालाधिक्याभाव के कारण अधिकमास नहीं है। व्यवहित और अव्यवहित— दोनों संसर्पों में कालाधिक्याभाव समानरूप से विद्यमान होने से दोनों अनधिकमास हैं। अधिकमास न होने के कारण संसर्पमात्र त्रिंशत्तिथ्यात्मक है, इसलिए संसर्पशुद्धिपक्ष वालों का यह कहना निराधार है कि व्यवहित संसर्प का शुद्ध (निज) मास पृथक् विद्यमान रहता है और अव्यहितसंसर्प का शुद्ध (निज) मास क्षयमास में समाविष्ट रहता है।

यदि 'वादिपरितोष' न्यायेन यह मान भी लिया जाए कि अव्यवहित संसर्प का दूसरा शुद्ध (निज) मास पृथक् अस्तित्व नहीं रखता, वह परवर्त्ती क्षयमास में समाविष्ट रहता है, तो भी संसर्पशुद्धिपक्ष वालों का यह कहना मान्य नहीं हो सकता कि इस स्थिति में संसर्प के मासिक व्रतपर्वों को दूसरा कोई विकल्प न होने के कारण (अगत्या) असंक्रान्तमास संसर्प में ही करना होगा। यहां पर संसर्पशुद्धिपक्ष वालों से हमारा प्रश्न है कि जब व्यवहित संसर्प की स्थिति में वे क्षयमास को मासयुगल मान कर उसमें दोनों मासों के मासिक व्रत-पर्व आदि अनुष्ठित करने का समर्थन करते हैं तब वे अव्यवहित संसर्प की स्थिति में भी ऐसा क्यों नहीं करते ? क्योंकि उस स्थिति में भी क्षयमास मासयुगलात्मक ही होता है। उदाहरण के रूप में—सं. २०३९ में व्यवहित संसर्प आश्विन है और

संसर्पाशुद्धिपक्ष वालों के मतानुसार पौषमास आए बिना ही माघ(अंहस्पति)मास आ जाता है, इस स्थिति में वे पौषमास को माघ(अंहस्पति)मास में समाविष्ट मान कर एक ही (अंहस्पति)मास में पौष और माघ—दोनों के मासिक व्रत-पर्व अनुष्ठित करते हैं। इसी तरह यदि कार्त्तिक संसर्पमास हो तदनन्तर तुरन्त वृश्चिक-धनु—दो संक्रान्तियों वाला मार्गशीर्ष (अंहस्पति)मास आ जाए, तब कार्त्तिक संसर्प का शुद्ध(निज)मास संसर्पाशुद्धिपक्ष वालों के मतानुसार मार्गशीर्ष (अंहस्पति)-मास में समाविष्ट होगा— इस स्थिति में भी संसर्पाशुद्धिपक्ष वालों को मार्गशीर्ष (अंहस्पति)मास में मार्गशीर्ष के मासिक व्रत-पर्वों के साथ ही कार्त्तिक के शुद्ध(निज)मास के मासिक व्रत-पर्व भी अनुष्ठित करने चाहिएं। यहां पर उनका यह तर्क गलत है कि अव्यवहित संसर्प का दूसरा(शुद्ध)मास अंहस्पतिमास में समाविष्ट होने से उसके मासिक व्रत-पर्व अनन्यगतिकतया असंक्रान्त संसर्प में ही मानने पड़ेंगे। यहां हमारा कहना है कि जिस प्रकार व्यवहित संसर्प की स्थिति में द्विसंक्रान्त (अंहस्पति)-मास आपके मतानुसार मासद्वयात्मक है, उसी प्रकार अव्यवहित संसर्प की स्थिति में भी द्विसंक्रान्तमास मासद्वयात्मक है। अतः दोनों स्थितियों में अंहस्पतिमास में ही दोनों मासों के मासिक व्रत-पर्वों के मिश्रितरूप में अनुष्ठान का मार्ग एक सा है, अतः यहां अव्यवहित संसर्प की शुद्धता में अनन्यगतिकता हेतु देना सर्वथा अयुक्त है। यहां पर उनका यह कहना भी कि "द्विसंक्रान्त मास अशुद्धमास है अतः अव्यवहित संसर्प के मासिक व्रत-पर्व उसमें विहित नहीं हैं" गलत है, क्योंकि उनके मतानुसार द्वि-संक्रान्तमास उन दोनों मासों के मासिक व्रत पर्वादि के लिए शुद्ध (ग्राह्य) है, जिन्हें वे उस द्विसंक्रान्तमास में समाविष्ट मानते हैं।

जबकि व्यवहित संसर्प की स्थिति में वे लोग अंहस्पति को दोनों मासों के मासिक व्रत-पर्वादि के लिए शुद्ध मानते ही हैं, तब अव्यवहित संसर्प की स्थिति में वे उसे अशुद्ध कैसे मान सकते हैं ? अव्यवहित संसर्प को शुद्ध मान कर उसमें उसके मासिक व्रत-पर्व अनुष्ठित नहीं किए जा सकते, क्योंकि वह असंक्रान्त होने से उनके मतानुसार अशुद्ध ही हैं, अपि च—वे लोग अव्य-वहित संसर्प की शुद्धता (मासिक व्रत-पर्वों के लिए ग्राह्यता) का एकमात्र कारण अनन्यगतिकता ही बतलाते हैं। इस अनन्यगति-कतारूप कारण का प्रतिवाद तो हम पहिले कर ही चुके हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है— संसर्प को अधिकमास (षष्टितिथ्या-त्मक) मानने पर द्विसंक्रान्तमास (अंहस्पति) प्रत्येक स्थिति में मासद्वयात्मक होगा, जिससे उपरोक्त तर्कों के अनुसार संसर्पा-शुद्धि पक्ष वालों को उस (अंहस्पति) में अव्यवहित संसर्प की स्थिति में भी दो मासों के व्रत-पर्व अनुष्ठित करने के लिए बाधित होना पड़ेगा। इसका परिणाम यह होगा कि अव्यवहित और व्यवहित—दोनों प्रकार के संसर्प अशुद्ध हो जाएंगे और इस के फलस्वरूप वे सभी वाक्य, जो संसर्प को शुद्ध, कर्मार्ह कहते हैं, निरवकाश बन जाएंगे। अतः यह स्पष्ट है कि संसर्प को शुद्ध, प्राकृत मानने वाले वाक्य व्यवहिताव्यवहितनिरपेक्ष ही हैं।

"यदि व्यवहित संसर्प को भी मासिक व्रत-पर्वादि के लिए शुद्ध मान लिया गया तो संसर्प को 'सर्वकर्मबहिष्कृत' मानने वाले (पृष्ठ ४१ पर दिए गए) वाक्य निरवकाश हो जाएंगे"— उनकी यह आपत्ति भी निर्मूल है। क्योंकि इन अधिकतर वाक्यों में "संसर्प" शब्द का प्रयोग सामान्य असंक्रान्त (अधिक)मास के लिए ही किया गया है — यह बात इन

वाक्यों को देखने से स्पष्ट है। देखिए—इन लगभग सभी वाक्यों में असंक्रान्तमास को ही संसर्प कहा गया है। क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास के रूप में संसर्प की चर्चा यहां नहीं है। श्रीबालशंकर दीक्षित ने भी अपने ग्रन्थ 'भारतीय ज्योतिष' में लिखा है कि नारद आदि ने सामान्य अधिमास के स्थान पर "संसर्प" शब्द का प्रयोग किया है। तैत्तिरीय एवं मैत्रायणी संहिता के क्रमशः (i, ४, १४, १) एवं (iii, १२, १३) मन्त्रों में भी साधारण अधिमास के लिए "संसर्प" शब्द प्रयुक्त हुआ है। निम्नांकित वाक्य में भी स्पष्ट रूप में क्षयमास से पूर्वापरवर्त्ती दोनों असंक्रान्त मासों को संसर्प कहा गया है—

क्षयमासो यदा जातः संसर्पाख्यद्वयं भवेत्।
तदा मासद्वयं ग्राह्यं चलनं न भवेद् यदि ॥[1]

इस प्रकार— "संसर्प को सर्वकर्मबहिष्कृत कहने वाले ये दो तीन वाक्य सामान्यतया असंक्रान्तमास के लिए ही प्रयुक्त है, क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमासरूप संसर्पमात्र के लिए नहीं" —यह स्पष्ट है। ये वाक्य अहस्पति एवं असंक्रान्तमात्रमासों को अन्यगतिक काम्य, विवाहादि मांगलिक एवं अन्य कृत्यों के लिए निन्दित तथा कर्मबहिष्कृत बतलाते हैं— यह बात हम आगे चल कर सिद्ध करेंगे। ध्यान रहे—क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास, जिसे सभी निबन्धकार और अधिकतर संहिताकार संसर्प की संज्ञा देते हैं, और अब वह इसी (क्षयपूर्ववर्त्ती अधिकमास) में रूढ़ हो गया है, तो विशेष अपवाद वाक्यों द्वारा

---

१. यह पद्य दक्षिण भारत के ज्योतिषशास्त्र के लब्धप्रतिष्ठ महाविद्वान् पिडपर्त्ति श्री चिनकृष्णमूर्ति शास्त्री एवम् पिडपर्त्ति श्री सुब्रह्मण्यशास्त्री द्वारा रचित "क्षयाधिमासनिर्णय" में उद्धृत है।

अनधिकमास, शुद्ध, कर्मार्ह माना गया है। संसर्प[1] को सर्वत्र प्राकृत मास लिखा गया है। प्राकृत का अर्थ सर्वत्र शुद्ध एवं कर्मार्ह ही माना गया। अधिकमास (षष्टितिथ्यात्मकमास) के उत्तरार्ध को मासिक व्रत-पर्वों के लिए कर्मार्ह माना गया है, इसी लिए उसे भी शास्त्रवाक्यों में 'प्राकृत" कहा गया है—

आद्यो मलिम्लुचो ज्ञेयो द्वितीयः प्राकृतः स्मृतः।

"प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यात्" की व्याख्या में वैद्यनाथदीक्षित ने प्राकृत का अर्थ "सर्वकर्मार्ह" लिखा है—

सङ्क्रान्तिरहितयोर्मध्ये यःपूर्वः स प्राकृतः शुद्धः सर्वकर्मार्ह इत्यर्थः।

यदि संसर्प को सर्वकर्मबहिष्कृत बतलाने वाले सभी वाक्यों में प्रयुक्त "संसर्प" शब्द को वादिपरितोषन्यायेन क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्त का वाचक मान भी लिया जाए तो भी संसर्पाशुद्धिपक्षधर अपने इस मत की कि "ये सभी वाक्य व्यवहितपूर्व संसर्प के लिए प्रवृत्त होते हैं", पुष्टि नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे पूर्वप्रतिपादन द्वारा व्यवहित संसर्प भी अनधिकमास (त्रिंशत्तिथ्यात्मक) होने से मासिक व्रत-पर्वों के लिए शुद्ध, कर्मार्ह सिद्ध होता है। वैद्यनाथदीक्षित, माधव आदि मीमांसकों ने भी व्यवहिताव्यवहितनिरपेक्षतया संसर्प को शुद्ध, कर्मार्ह, सर्वकर्मार्ह लिखा है। कृष्णम्भट्ट, गोकुलनाथोपाध्याय ("मासमीमांसा"कार) एवं अनन्तदेव ("स्मृतिकौस्तुभ"कार) आदि मीमांसकों ने तो स्पष्टरूप में व्यवहितपूर्व संसर्प को भी कर्मार्ह

१. ध्यान रहे— हम यहां निबन्ध में सर्वत्र क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास को ही "संसर्प" लिख रहे हैं।

माना है। अनन्तदेव ने "स्मृतिकौस्तुभ" में संसर्प की क्रिया-बाह्यता का प्रतिवाद इस प्रकार किया है—

तत्राधिमासो नाम असङ्क्रान्तो मलमासः। मलमासत्वं च क्रियाबाह्यत्वम्। तच्च मासवृत्तियद्धर्मावच्छेदेनावश्यक्रियानिषेधः तद्धर्मवत्त्वम्। असंक्रान्तपदेन क्षयस्य द्वितीयेन क्षयपूर्वभाव्यसङ्क्रान्तस्य निरासः, वक्ष्यमाणरीत्या तस्याऽलक्ष्यत्वात्। अतएव "एकमात्रसंक्रान्तिरहितो मासः मलमासः"—इति प्राचां लक्षणमपास्तम्।

"संसर्पाशुद्धिपक्ष"धर यहां पर यह आपत्ति करते हैं कि संसर्प को सर्वकर्मार्ह और सर्वकर्मबहिष्कृत बतलाने वाले इन वाक्यों में विरोध है, अतः इनकी एकमात्र व्यवस्था यही है कि इन्हें विषयभेद (व्यवहितपूर्व एवं अव्यवहितपूर्वभेद) से स्वीकार किया जाए। उनकी यह व्यवस्था अनेक पूर्वनिर्दिष्ट अव्यवस्थाओं, अधिमासोत्पत्ति-सिद्धान्त-विरोध आदि के कारण सर्वथा असंगत है। इस विरोध के परिहार के लिए हमें "सर्वकर्मबहिष्कृतौ" का अर्थ "अन्यगतिक[1]सर्वकर्मबहिष्कृतौ" मानना पड़ेगा।

यह ठीक है कि— विशेष निषेधकवचन द्वारा सामान्य निषेधकवचन का उपसंहार मीमांसान्यायविरुद्ध है, लेकिन "सर्व" शब्द सामान्यतया प्रयुक्त होने पर भी प्रसंगवश अपने निरवशेषरूप शाब्दिक अर्थ को छोड़ कर प्रायशः संकुचित अर्थ का प्रतिपादन करने की प्रकृति रखता है, अतः संसर्प और

---

१. विवाहादि शुभकृत्य एवं काम्य कृत्य अन्यगतिक कहलाते हैं।

अंहस्पति के बारे में अनेक शास्त्रवाक्य तथा मूलभूत सिद्धान्तों को दृष्टि में रखते हुए "सर्वकर्मबहिष्कृतौ" का "अन्यगतिक-सर्वकर्मबहिष्कृतौ" द्वारा उपसंहार मीमांसान्यायानुमोदित ही है।

इस में कोई सन्देह नहीं— "वार्त्ताकं न भक्षयेत्" निषेध-वाक्य में "वार्त्ताक" का अर्थ उपसंहारनियमानुसार "श्वेत-वार्त्ताक" नहीं किया जा सकता, लेकिन—

सिंहसंस्थे गुरौ यत्नात् सर्वारम्भान् विवर्जयेत्।
आरभ्य जन्मदिवसं यावत्त्रिंशद्दिनं भवेत्।
स जन्ममासो विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु ॥

अतीचारगतो जीवस्तं राशिं नैति चेत्पुनः।
लुप्त संवत्सरो ज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु ॥

तथा—

राशौ नक्रे राशिचारे यदि स्याद्।
वाचामीशोऽनिष्टदः सर्वकार्ये ॥

इत्यादि वाक्यों में "सर्वकर्म" आदि शब्दों के अर्थ का संकोच तो प्रसङ्गानुसार "सर्वमाङ्गलिककर्म" के रूप में करना ही होगा। गीर्वाणवाग्वर्धिनी सभा, वाराणसी के मीमांसकों के मत में ये सभी वाक्य "सर्व" शब्द के उल्लेख के कारण स्पष्ट सामान्यविधिरूप हैं, अतः उनके मत से तो यहां उपसंहार की प्रसक्ति होनी ही नहीं चाहिए। लेकिन उनके मतानुसार उपसंहार-प्रसक्ति न करने पर इन वाक्यों का प्रवृत्तिक्षेत्र असीमित हो जाएगा, जिससे विवाहादि मांगलिक कार्यों के अलावा शेष अन्य सभी प्रकार के कार्यों में भी ये वाक्य प्रवृत्त होने लगेंगे, परिणामस्वरूप भारी अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी।

"इन ("सिंहसंस्थे गुरौयत्नात् सर्वारम्भान् विवर्जयेत्" इत्यादि) वाक्यों में प्रसंगवश "सर्वकर्म" का संकुचित अर्थ "सर्वमांगलिक-कर्म" स्वतः आपतित हो जाता है, लेकिन संसर्प को "सर्वकर्म-बहिष्कृत" बतलाने वाले वाक्यों में प्रयुक्त "सर्व" शब्द के अर्थसंकोचन में ऐसा कोई हेतु या प्रमाण नहीं है" —यह कहना भी निर्मूल है, क्योंकि पहिले (पृष्ठ २८ पर) दिए गए विवेचन-प्रतिपादनानुसार संसर्पमास सभी (व्यवहितपूर्व एवम् अव्यव-हितपूर्व—दोनों) स्थितियों में त्रिशत्तिथ्यात्मक ही होता है, यदि इन वाक्यों में प्रयुक्त "सर्व" शब्द के अर्थ का संकोच न किया गया (अर्थात्— "सर्वकर्मबहिष्कृत" का अर्थ "अन्यगतिक-सर्वकर्मबहिष्कृत" न किया गया) तो संसर्प में तदीयमास-प्रयुक्त नवरात्रादि व्रत-पर्वों का अनुष्ठान नहीं हो सकेगा और वहां वे सब व्रत-पर्व लुप्त हो जाएंगे। इस प्रकार यहां "सर्व" शब्द के अर्थसंकोचन में "संसर्प की अनधिमासता" हेतु के रूप में स्पष्टतया उपलब्ध है।

किञ्च इन वाक्यों में संसर्प एवम् अंहस्पति के साथ अधिमास को भी "सर्वकर्मबहिष्कृत" लिखा गया है। जबकि अधिमास के सन्दर्भ में "सर्वकर्मबहिष्कृत" का अर्थ अर्थसंकोच द्वारा निर्विवाद-रूप से "अन्यगतिकसर्वकर्मबहिष्कृत" ही किया जाता है तब संसर्प और अंहस्पति के बारे में उसी प्रकार के अर्थसंकोच का प्रतिवाद नहीं किया जा सकता—"संनियोगशिष्टानां सहैव प्रवृत्तिः सहैव निवृत्तिः"।

एक और तर्क है— यदि ये मीमांसक "संसर्पांहस्पती मासौ सर्वकर्मबहिष्कृतौ" आदि वाक्यों में "सर्वकर्मबहिष्कृतौ" का अर्थ "अन्यगतिकसर्वकर्मबहिष्कृतौ" स्वीकार नहीं करते तो

उन्हें अंहस्पति मास को भी सभी कार्यों के लिए अग्राह्य मानते हुए तदीय (अंहस्पति-सम्बन्धी) मासप्रयुक्त व्रत-पर्वों से उसे (अंहस्पति को) वञ्चित करना होगा, जिससे अंहस्पति के अनन्य-गतिक मासिक व्रत-पर्व लुप्त हो जाएंगे।

ध्यान रहे—अंहस्पति को ये मीमांसक मासयुगलात्मक भी मानते हैं। इसलिए यदि इन वाक्यों में प्रयुक्त 'सर्व' शब्द का अर्थसकोच न किया गया तो अंहस्पति में समावेशित दोनों मासों के मासिक व्रत-पर्व लुप्त हो जाएंगे[1]।

संसर्प और अंहस्पति के विषय में प्रयुक्त "सर्वकर्मबहिष्कृत" आदि विशेषणों के अर्थसंकोचन को निबन्धकार भी समर्थित करते हैं। इन मासों को वे भी अन्यगतिक कार्यों के लिए अग्राह्य एवम् अनन्यगतिक कार्यों के लिए ग्राह्य घोषित करते हैं—

"पुरुषार्थचिन्तामणिकार" कहते हैं—

'तस्माद् विवाहाद्यतिरिक्तश्रौत-स्मार्त्तादिकर्मसु संसर्पो

---

१. कुछ लोग द्विसंक्रान्तमास में होने वाली दो संक्रान्तियों में से प्रथम संक्रान्ति से सम्बद्ध "संक्रान्तिपद्धत्य"नुसारीमास को लुप्त मान कर उसे क्षयमास कहते हैं, जोकि क्षयमास की परिभाषानुसार सर्वथा गलत है, क्योंकि—जिस मास में दो संक्रान्तियां हों उस मास को क्षयमास कहते हैं— "द्विसंक्रान्तिमासः (द्वे संक्रान्ती यस्मिन् सः मासः) क्षयाख्यः।" जो मास लुप्त है, पंचाङ्ग में अस्तित्व ही नहीं रखता, उसे क्षय नहीं कहा जा सकता। क्योंकि—लुप्त (अस्तित्व न रखने वाले) मास में दो संक्रान्तियों की घटना की कल्पना खपुष्पकल्पना है। यदि लुप्तमास को क्षयमास मान भी लिया जाए तो क्षयमास को "कर्मार्ह" "सर्वकर्म-बहिष्कृत" कहने वाले वाक्य अर्थहीन हो जाएंगे, क्योंकि जिस मास का अस्तित्व ही नहीं है उसे कर्मार्ह, "सर्वकर्मबहिष्कृतः" कहना वन्ध्यापुत्र को सच्चरित्र या चरित्रहीन कहने की भान्ति कोई तुक नहीं रखता।

योग्य एव । यस्तु तस्मिन्नधिकशब्दप्रयोगः सोऽसंक्रान्तत्वाभिप्रायेण, न तु कर्मानर्हत्वाभिप्रायेण ॥'

अर्थात्—विवाह आदि (अन्यगतिक) कार्यों के अलावा सभी (अनन्यगतिक) श्रौत (मासिक श्राद्ध आदि) और स्मार्त्त[1] (नवरात्रादि) आदि कार्यों के लिए संसर्प ग्राह्य है। इसके साथ जो अधिक शब्द का प्रयोग है वह असंक्रान्त होने के कारण है, कर्मानर्ह होने के कारण नहीं।

"पुरुषार्थचिन्तामणि" में ही लिखा है—

संसर्पांहस्पत्योर्निन्दितत्वं विवाहादिशुभकार्यविषयम्।

अर्थात्—संसर्प और अंहस्पति की अग्राह्यता केवल विवाह आदि शुभ कर्मों के बारे में ही है। (शेष श्रौत, स्मार्त्त कर्मों के बारे में नहीं)।

कालमाधव भी यही कहता है—

विवाहादौ त्रयस्त्याज्याः संसर्पांहस्पती उभौ।
शुद्धौ श्रौते च स्मार्त्ते च................॥

अर्थात्— संसर्प, अंहस्पति और अधिकमास—तीनों विवाह आदि शुभ कृत्यों के लिए वर्जित हैं। संसर्प और अंहस्पति—ये दोनों श्रौत और स्मार्त्त कर्मों के लिए ग्राह्य हैं।

ऊपर उद्धृत सभी निबन्धवचन संसर्प और अंहस्पति को विवाह आदि शुभ कृत्यों के लिए वर्जित कहते हैं—इससे स्पष्ट है ये मास अन्यगतिक कार्यों के लिए अग्राह्य हैं। श्रौत एवं

---

१. "स्मार्त्तानि गौरीव्रतादीनि" —कालमाधव

स्मार्त्त कृत्यों के लिए इन दोनों मासों को इन वचनों में ग्राह्य लिखा है, इससे यह स्पष्ट है कि यहां श्रौत और स्मार्त्त कृत्यों का अभिप्राय अनन्यगतिक श्रौत-स्मार्त्त (तत्तन्मासप्रयुक्त श्राद्ध, व्रत, पर्व आदि) कार्यों से ही है, क्योंकि ऐसा न होने से त्रिश-त्तिथ्यात्मक संसर्प और अंहस्पति के अनन्यगतिक (मासिक श्राद्ध, व्रत-पर्व आदि) कर्मों का लोप प्रसक्त होगा।

कार्त्तिकादिषु मासेषु यदि स्यातां मलिम्लुचौ।
सर्वकर्महरः प्रोक्तः पूर्वस्तत्र मलिम्लुचः ॥

इस वाक्य में संसर्प के लिए प्रयुक्त "सर्वकर्महर" विशेषण का अर्थ भी अर्थसंकोच द्वारा "अन्यगतिकसर्वकर्महरः" करने पर इस वाक्य का जाबालि आदि के वाक्यों से समन्वय हो जाता है।

संसर्प को "निन्दित" या "दुष्ट" बतलाने वाले वाक्यों में भी इसी आधार पर अर्थसंकोच द्वारा "निन्दित" या "दुष्ट" का अर्थ "अन्यगतिक कर्मों के लिए निन्दित या दुष्ट" समझना चाहिए।

इसी भान्ति वैद्यनाथदीक्षित एवम् "धर्मसिन्धु"कार द्वारा संसर्प के लिए प्रयुक्त "सर्वकर्मार्हं" विशेषण का संकुचित अर्थ "अनन्यगतिक सर्वकर्मार्हं" ही स्वीकार करना होगा।

'मासत्रयं त्याज्यमिदं प्रयत्नाद् विवाहयज्ञोत्सवमङ्गलेषु' वाक्य में उत्सव शब्द का अर्थ

अब हम संसर्पाशुद्धिपक्षाभिमानियों द्वारा अपने पक्ष की

पुष्टि के लिए पदे-पदे उद्धृत किए जाने वाले निम्नांकित वाक्य पर विचार करेंगे—

> यद्वर्षमध्येऽधिकमासयुग्मं
> तत्कार्त्तिकादित्रितये क्षयाख्यः ।
> मासत्रयं त्याज्यमिदं प्रयत्नाद्
> विवाहयज्ञोत्सवमङ्गलेषु ॥

संसर्पाशुद्धिपक्ष के अनुयायियों का कहना है कि इस वाक्य में क्षयपूर्वापरवर्त्ती दोनों असंक्रान्तमास एवं क्षयमास में मास-प्रयुक्त नवरात्र आदि उत्सवों का अनुष्ठान सर्वथा वर्ज्य लिखा है, लेकिन "पूर्वो मास: प्रशस्त: स्यात्" आदि वाक्यों में संसर्प को शुद्ध लिखा गया है। अत: परस्पर विरुद्धत्वेन उपस्थित इन वाक्यों की पूर्ववत् व्यवहिताव्यवहितभेदेन व्यवस्था करनी होगी।

संसर्पाशुद्धिपक्ष के पोषक लोग उपरोक्त वाक्य में प्रयुक्त "उत्सव" शब्द से माससापेक्ष नवरात्रादि का ग्रहण करते हैं— यह ठीक नहीं है। यहां उत्सव शब्द अन्यगतिक उत्सवों का वाचक है। इस प्रकार "संसर्प" के लिए यह "उत्सव" शब्द व्रतोद्यापन, सप्ताह, नवाह आदि उत्सवों का प्रत्यायक है, नवरात्रादि का नहीं, क्योंकि संसर्प के त्रिशत्तिथ्यात्मक होने के कारण वे (नवरात्रादि) तो वहीं (संसर्प में ही) अनुष्ठित हो सकते हैं, वे संसर्प के विषय में अनन्यगतिक हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि— यहां प्रयुक्त "उत्सव" शब्द के अर्थ का हमें "अन्यगतिक उत्सव" में संकोच करना होगा, अन्यथा हमें संसर्प को अधिमास मानने के लिए बाधित होना पड़ेगा, लेकिन

पूर्वप्रतिपादित विवेचनानुसार संसर्प किसी भी स्थिति में अधिक-मास नहीं है।

क्षयमास के लिए भी इस वाक्य में प्रयुक्त "उत्सव" शब्द व्रतोद्यापन, सप्ताह पारायण आदि उत्सवों, जो अन्यगतिक हैं, का ही प्रत्यायक है, अन्यथा द्विसंक्रान्तमास के माससापेक्ष व्रतोत्स-वादि लुप्त हो जाएंगे।

ध्यान रहे—उत्सव और व्रत शब्द 'अन्यगतिक उत्सव एवम् व्रत' के अर्थ में अनेकत्र प्रयुक्त हुए हैं। 'बृहद्दैवज्ञ-रञ्जन' में उद्धृत ब्रह्मपुराण का यह निम्नलिखित वाक्य देखिए, जहां गुरुशुक्रास्तकाल में व्रत एवम् उत्सवों का विधान निषिद्ध किया है—

> यदा रवेर्मण्डलमेति काव्यो
> विनष्टतेजा गुरुरप्यथैवम्।
> कालस्य दीक्षाव्रततीर्थयात्रा-
> यज्ञोत्सवानां च विनाशकृत्स्यात्॥

क्या संसर्पशुद्धिपक्ष वाले गुरुशुक्रास्त के काल में विजया-दशमी आदि मासिक उत्सव एवम् रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी आदि मासिक व्रतों का लोप स्वीकार करेंगे? कदापि नहीं। स्पष्ट है—यहां भी "व्रत एवं उत्सव" दोनों शब्द अन्यगतिक व्रत एवम् उत्सवों के ही वाचक हैं।

"त्रिस्थलीसेतु" का यह निम्नांकित वाक्य भी गुर्वादित्य,

गुरुशुक्रास्त एवम् सिंहस्थ गुरु के काल में "व्रत" के विधान का निषेध करता है—

> गुर्वादित्ये गुरौ सिंहे शुक्रे वास्तमुपागते ।
> त्यजेद् यानं महादानं व्रतं देवविलोकनम् ॥

यहां भी "व्रत" शब्द सामान्यतया प्रयुक्त है, इसका अर्थ मासप्रयुक्त व्रत (कृष्णजन्माष्टमी व्रत, दूर्वा व्रत आदि) नहीं लिया जा सकता ।

स्पष्ट है—जिस प्रकार इन वाक्यों में उत्सव एवम् व्रत शब्द के अर्थ का संकोच करते हुए इनका अर्थ अन्यगतिक उत्सव एवं व्रत ही लिया जाता है, ठीक उसी प्रकार "मासत्रयं त्याज्यमिदं प्रयत्नाद् विवाहयज्ञोत्सवमंगलेषु" वाक्य में भी "उत्सव" शब्द के अर्थ का संकोच करना पड़ेगा, अन्यथा संसर्प मास के मासप्रयुक्त उत्सवों के लोप का प्रसंग आ पड़ेगा, क्योंकि संसर्प सर्वदा त्रिंशत्तिथ्यात्मक मास होता है ।

सारांश यह है—संसर्प के लिए प्रयुक्त प्राकृत, प्रशस्त आदि शब्द संसर्प को अनन्यगतिक कर्मों के लिए शुद्ध (ग्राह्य) और "सर्वकर्मबहिष्कृत" आदि शब्द उसे अन्य-गतिक कर्मों के लिए अशुद्ध (अग्राह्य) बतलाते हैं । 'मासत्रयं त्याज्यम्......' वाक्य में प्रयुक्त 'उत्सव' शब्द अन्यगतिक उत्सवों का वाचक होने से संसर्प को उद्यापन आदि कालान्तरसाध्य उत्सवों के लिए वर्ज्य कहता है । इस प्रकार संसर्प की शुद्धि-अशुद्धि के बारे में प्रयुक्त इन

विभिन्न वाक्यों में संसर्पाशुद्धिपक्षाभिमानियों द्वारा बलात् प्रवर्त्यमान विरोध सर्वथा निराधार सिद्ध होता है। यह युक्ति-युक्त शास्त्रीय व्यवस्था है। इस व्यवस्थानुसार व्यवहितपूर्व एवम् अव्यवहितपूर्व—दोनों संसर्प त्रिंशत्तिथ्यात्मक एवम् माससापेक्ष व्रतोत्सवादि के लिए सर्वथा शुद्ध सिद्ध हो जाते हैं और व्यवहितपूर्व संसर्प की स्थिति में अंहस्पतिमास को मासद्वयात्मक मान कर उसमें दो मासों के व्रतोत्सवों के अनुष्ठान का तथोक्त सिद्धान्त भी अशास्त्रीय सिद्ध हो जाता है।

ज्योतिषसिद्धान्त (अधिमासोत्पत्तिसिद्धान्त) एवम् शास्त्रवाक्यों से इस व्यवस्था का परिपूर्ण आनुकूल्य है, इसके अनुसरण से हमारे व्रत-पर्व शास्त्रप्रतिपादित काल एवम् परम्परागत प्रणाली (पौर्वापर्य आदि) का उल्लंघन नहीं करते, मीमांसाशास्त्र भी इसका पूर्ण अनुमोदन करता है।

कुछ मीमांसक लोगों के लिए हमारी यह व्यवस्था केवल इस एक की दृष्टि में विक्षोभक हो सकती है कि हम ने तिथ्यर्धवाक्य एवम् मासयुगलीकरण वाक्यों को सर्वथा निरवकाश बना डाला है। लेकिन उनका यह विक्षोभ तर्कसंगत नहीं है।

इन तिथ्यर्ध एवम् मासयुगलीकरण के प्रतिपादक वाक्यों की अधिमासोत्पत्तिसिद्धान्त, तिथ्युत्पत्तिसिंद्धान्त धर्मशास्त्रीय वाक्य, पंचाङ्गसंरचना और व्रत-पर्वों की परम्परागत व्यवस्था से असह्य, अक्षम्य प्रतिकूलता पदे-पदे उपलब्ध होती है, इसके

विपरीत संसर्गशुद्धिपक्ष में इस प्रकार की कोई प्रतिकूलता उपस्थित ही नहीं होती। अतः "अबाधेनोपपत्तौ बाधो न न्याय्यः" न्याय के अनुसार हम मासयुगलीकरण एवम् तिथ्यर्ध-प्रतिपादक वाक्यों के निरवकाशत्वापादन को सर्वथा न्याय्य समझते हैं। इन उपपत्तिशून्य वाक्यों की निरवकाशता से उत्पन्न निर्मूल भीति से तिथ्युपपत्ति एवम् अधिमासोपपत्ति आदि अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों की हत्या करना 'मूषकभिया गृह-दाहः' से किसी भी प्रकार कम नहीं है।

"उपलभ्यमान सभी वाक्य आप्तप्रणीत ही हैं"— मीमांसकों की यह धारणा यत्किञ्चित् भी बुद्धिस्पर्शी नहीं है— ऋषियों के अनेक सिद्धान्त परस्पर विसंवादी रूप में मिलते हैं, आस्तिक-दर्शनों के भी अनेक मूलभूत तत्त्वों में एकरूपता नहीं है, ज्योतिष के अनार्ष-आर्ष सिद्धान्तग्रन्थों में निर्दिष्ट ग्रह-भगणादिमानों में भी परस्पर अन्तर देखने को मिलता है। किसी भी शास्त्रपरम्परा में आने वाले ऋषि-मुनि, आचार्यों के मतों में अनैकमत्य प्रकृतिसिद्ध है। हम इन सभी परस्पर विसंवाद-शील मतों-पक्षों को समानरूपेण प्रामाणिक मान कर याथातथ्येन इन्हें विषयभेद या विकल्प द्वारा व्यवस्थापित करने का यदि प्रयास करेंगे तो अनेकत्र हम तत्त्व तक नहीं पहुंच पाएंगे, क्योंकि मिथः विरोधी दो पक्षों के समर्थकों में से, यह सम्भव है, कोई एक अथवा दोनों ही अप्रमा के प्रभाव में हों। इनमें से कौन सा पक्ष यथार्थ है, कौन सा नहीं—इसके निर्धारण के लिए यदि सम्भव हो तो मिथः विरोधी तत्त्वों का उपस्थापन करने वाले दोनों पक्षधरों से भिन्न किसी अन्य तीसरे शास्त्र का, जो उस विवादास्पद पदार्थ का प्रतिपादक हो, आश्रय लेना

बहुत ही आवश्यक में । इस प्रकृत (संसर्पशुद्धयशुद्धिसम्बन्धी) विवाद में परस्परविरोधी प्रतिपादन करने वाले दो शास्त्रीय वाक्यसमूह उपलब्ध हैं । इनमें से किसे प्रामाणिक समझा जाए—यह निर्धारण करने के लिए ज्योतिषशास्त्रीय (अधिमासोत्पत्ति) सिद्धान्त का आश्रय नितान्त आवश्यक है, क्योंकि संसर्प के अधिमासत्व या अनधिमासत्व पर ही इस विवाद का तत्त्वविनिश्चय अवलम्बित है। लेकिन आश्चर्य है— मीमांसक लोग इस विवाद में इस मूलभूत शास्त्र को ताक में रख कर ही निर्णय में प्रवृत्त हुए हैं, जिससे वे ऐसे तथाकथित "तत्त्व" को व्यवस्थापित कर रहे हैं, जिसने हिन्दूपंचाङ्ग में असह्य अव्यवस्थाएं उत्पन्न कर डाली हैं और ज्योतिषशास्त्र के मूलसिद्धान्त बुरी तरह तिरस्कृत कर दिए हैं। कोई भी तर्कजीवी इस व्यवस्था का सम्मान नहीं कर सकता —यह हम प्रतिज्ञापूर्वक कह सकते हैं।

तिथ्यर्ध एवम् मासयुगलीकरण वाक्यों के प्रवर्त्तक निश्चित रूप में भ्रान्त थे— इसमें कोई सन्देह नहीं है। हमें व्यर्थ के निरुपपत्तिक, अनेक अव्यवस्थाओं को जन्म देने वाले वाक्यों को अप्रमाण मानना ही होगा। इस विवाद में परस्पर विरोधी असंख्य वचन हमें पदे-पदे मिलते हैं। इनमें से जो वाक्य प्रतिपाद्य पदार्थ में किसी प्रकार की विकृति पैदा किए बिना समन्वित हो सकते हैं, जिनके अनुसरण में किसी प्रकार की व्यावहारिक या अन्य कोई बाधा उपस्थित नहीं होती, उन्हें हमें स्वीकार कर लेना होगा, शेष वाक्यों को रद्दी की टोकरी में फेंकने में हमें संकोच नहीं होना चाहिए। संसर्प के अधिमासत्व-अनधिमासत्व, मासयुगलीकरण एवम् तिथ्यर्ध के प्रतिपादक विभिन्न वाक्यों

में अनेकत्र असमाधेय परस्पर असहमति देख कर "स्मृतिमुक्ता-फल" के रचयिता श्रीवैद्यनाथदीक्षित ने क्षयमास विवेचन के अन्त में यह निम्नांकित वाक्य लिखा है, जिससे हम भी पूरी तरह सहमत हैं—

अत्र (क्षयमासप्रकरणे) परस्परविरुद्धानि वचनानि सन्ति, तान्यत्रैवार्थे कथंचिद् योजनीयानि, दुर्योजनानि च त्याज्यानि।

क्षयमास - संसर्प - अधिमाससम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर

[विगत (१ से ८५ तक के) पृष्ठों पर हमने धर्मशास्त्रवाक्यों एवम् ज्योतिषसिद्धान्त के आधार पर सिद्ध किया है कि क्षयपूर्व-वर्त्ती असंक्रान्तमास (संसर्प) व्यवहितपूर्वत्व एवम् अव्यवहितपूर्वत्व —दोनों स्थितियों में माससापेक्ष (नवरात्र, दीपावली आदि) व्रत-पर्वों के लिए ग्राह्य है। अंहस्पतिमास की मासद्वयात्मकता का प्रतिवाद भी हमने वहां किया है। अब हम यहां हमारी इस व्यवस्था के विरोध में उपस्थित किए जाने वाले प्रश्नों के उत्तर देंगे। इन प्रश्नों में से अधिकतर प्रश्न सांगवेद विद्यालय रामघाट, वाराणसी की श्रीगीर्वाणवाग्वर्धिनी सभा एवम् सर्वभारतीय काशिराजन्यास, वाराणसी के एतद्विषयक दो प्रकाशनों से हमें मिले हैं। यद्यपि विगत पृष्ठों (१ से ८५) पर दिए गए विस्तृत निबन्ध में लगभग इन सभी प्रश्नों के उत्तर दिए ही जा चुके हैं, तथापि यहां इन प्रश्नों की निर्मूलता की और भी पुष्टि के लिए इनके उत्तर यहां पृथक् भी दिए गए हैं। इन प्रश्नों में से कुछ प्रश्न इस विगत निबन्ध में अस्पृष्ट भी रह गए हैं, अतः यह प्रश्नोत्तरावली परिशिष्ट का भी काम कर रही है।]

प्रश्न (१)— जबकि 'तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च' आदि अनेक वाक्य क्षयमास वाले वर्ष में दो अधिमासों को स्वीकार करते हैं, तब संसर्प को अनधिमास कैसे कहा जा सकता है ?

उत्तर— "असंक्रान्तमास अधिकमास होता है"—यह वचन बाहुल्याभिप्रायक है। इसीके अनुसार आपाततः ये दोनों असंक्रान्त मास समानरूपेण अधिकमासतया प्रतीत होते हैं। इसी लिए "तदा वर्षमध्ये......" इस प्रकार के वाक्य प्रवृत्त हुए हैं। लेकिन विशेष वाक्य संसर्प को अधिकमास नहीं स्वीकार करते —यह हम पहिले विस्तार से बतला चुके हैं।

ध्यान रहे— संसर्प को अनधिकमास बतलाने वाले जाबालि आदि के वाक्य भी संसर्प को पहिले अधिकमास बतला कर बाद में उसे प्रशस्त या अनधिमास बतलाते हैं। जैसे—

एकस्मिन्नपि वर्षे चेद् द्वौ मासावधिमासकौ।
पूर्वो मासः प्रशस्तः स्यादुत्तरस्त्वधिमासकः॥

संसर्प में अधिमास का असंक्रान्तत्वरूप लक्षण घटित होता है, इसीलिए इसे कुछ वाक्यों में अधिमास कह दिया गया है। लेकिन विशेष वाक्य असंक्रान्तत्वरूप अधिमासलक्षणोपेत होने पर भी इसे अधिमास न मानने का निर्देश करते हैं—

एकस्मिन्नपि वर्षे यत्रेदं लक्ष्म दृश्यत उभयोः।

तत्रोत्तरोऽधिमासः स्फुटगत्या चायमर्केन्द्वोः ॥

शातातप का यह निम्नांकित वाक्य भी क्षयपूर्वापरवर्त्ती दोनों असंक्रान्तमासों को पहिले प्रतीयमानत्वेन अधिकमास के रूप में चर्चित करके बाद में विशिष्ट प्रतिपादन द्वारा क्षयपरवर्त्ती असंक्रान्तमास को ही अधिमास बतलाते हुए क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास (संसर्प) के अधिमासत्व का निषेध करता है—

एकत्र मासद्वितयं यदि स्याद्
वर्षेऽधिकं तत्र परोऽधिमासः ॥

[अर्थात्—एकत्र वर्षे यदि मासद्वितयम् अधिकं (अधिमासद्वयं) स्यात्, तत्र परः क्षयपरवर्त्ती अधिमासः, क्षयपूर्ववर्त्ती नाधिमास इत्यर्थः।]

सारांश यह है कि— अधिमास का असंक्रान्तत्वरूप लक्षण अपूर्ण या दोषपूर्ण है, अतः इसे यदि ठीक से परिभाषित करना हो तो इस प्रकार हमें कहना होगा— "कालाधिक्ये सति असंक्रान्तत्वम् अधिमासत्वम्।"

प्रश्न (२)— असंक्रान्तमासत्व अधिमास का लक्षण है, संसर्प में यह घटित होता है ?

उत्तर— प्रश्न (१) का उत्तर यद्यपि पर्याप्त है, पुनरपि इस विषय में एक दो और बातें यहां कह देते हैं—

असंक्रान्तत्व यद्यपि अधिमास का लक्षण है, तदनुसार संसर्प को भी अधिमास माना जाना चाहिए, लेकिन कालाधिक्याभाव के कारण संसर्प को अधिमास नहीं माना जाता (देखें पृष्ठ १७)।

कालाधिक्य होने पर ही मलमासत्व घटित होता है, अन्यथा नहीं। म. म. वाचस्पतिमिश्र ने 'द्वैतनिर्णय' में संसर्प के मलमासत्व का निषेध किया है। उनका यह निम्नांकित वाक्य स्पष्ट कह रहा है कि आद्य(क्षयपूर्ववर्त्ती) असंक्रान्तमास संक्रान्तिहीन होने पर भी मलमास नहीं है, मलमासत्व केवल क्षयपरवर्त्ती असंक्रान्तमास में ही है—

तथा चाद्यन्तयोर्मलमासत्वसम्भावनायाम् अन्त्यस्य मलमासत्वे भीमपराक्रमवचसा व्यवस्थितौ आद्यस्याऽसंक्रान्तस्यापि न मलमासत्वं वचनबलादेव।

कालनिर्णय में हेमाद्रि भी क्षयपूर्वापरवर्त्ती दो असंक्रान्त मासों में से केवल क्षयपरवर्त्ती असंक्रान्तमास को ही अधिमास कहते हैं—

यत्रैकस्मिन्वर्षेऽसंक्रान्तं मासद्वयं सक्रान्तिद्वययुतो मासश्च तत्र यावसंक्रान्तद्विसंक्रान्तौ तौ संसर्पांहस्पतिसंज्ञौ अन्यश्चाधिमासः।

"वीरमित्रोदय" के "समय प्रकाश" में भी यही कहा है—

संसर्पश्च न मलमासः, किन्तु शुद्धः 'एकस्मिन्नपि वर्षे यत्रेदं.........' इति जाबालिवचनात्, उत्तरस्तु अशुद्धः।

इस प्रकार असंख्य अपवादक वचनों से संसर्पमास असंक्रान्त होने पर भी अधिकमास (षष्टितिथ्यात्मकमास) नहीं है। यही

कारण है—संहिता आदि में अनेक ऐसे वाक्य उपलब्ध होते हैं जो संसर्प और अधिमास दोनों को पार्थक्येन निर्दिष्ट करते हैं[1]।

प्रश्न (३)— जिस मास में सूर्यसंक्रान्ति नहीं होती वह मास नपुंसक कहलाता है। नपुंसकमास सभी कार्यों के लिए वर्जित है ?

उत्तर— "नपुंसक" अधिकमास का ही पर्यायवाची है, अतः प्रश्न (१), (२) के उत्तर इसके लिए पर्याप्त हैं।

किञ्च यदि संसर्प को "नपुंसक" मान कर उसमें सभी कार्य वर्जित करने की बात मान ली जाए तो संसर्प को प्रशस्त, शुद्ध कहने वाले वाक्य निरर्थक हो जाएंगे। इससे संसर्प का अनधिमासत्व प्रतिपादित करने वाले वाक्य भी व्यर्थ सिद्ध होंगे, क्योंकि संसर्प अनधिमास होने के कारण त्रिंशत्तिथ्यात्मक होता है। यदि उसे नपुंसकत्वेन अशुद्ध मान लिया गया तो उसके मासप्रयुक्त अनन्यगतिक नवरात्रादि व्रत-पर्व वहां अनुष्ठित न हो सकने के कारण लुप्त ही हो जाएंगे। अतः स्पष्ट है—नपुंसकत्व केवल अधिमास में ही अभीष्ट है।

प्रश्न (४)— 'रविणा लंघितो मासो ह्यनर्हः सर्वकर्मसु' —इत्यादि वाक्य क्या संसर्प को कर्मानर्ह नहीं बतलाते ?

उत्तर— "कालमाधव"कार ने इन वाक्यों के अपवाद के रूप में "मासद्वयेऽब्दमध्ये तु संक्रान्तिर्न यदा भवेत्। प्राकृतस्तत्र

---

१. यस्मिन्मासे न संक्रान्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा।
संसर्पांहस्पती मासावधिमासश्च निन्दिताः॥
(बृहस्पति)

पूर्वः स्यादधिमासस्तथोत्तरः ॥ इत्यादि वाक्यों को उद्धृत किया है ।

"पुरुषार्थचिन्तामणि"कार ने तो स्पष्ट लिखा है कि— "रविणा लंघितो मासः......" आदि वाक्य क्षयमास से पूर्ववर्त्ती संसर्पसंज्ञक असंकान्तमास में प्रवृत्त न हो कर क्षयमास के परवर्त्ती असंक्रान्तमास में ही प्रवृत्त होते हैं—

'रविणा लंघितो मासो ह्यनर्हः सर्वकर्मसु ।' इत्यादि-वचनानि क्षयमासात् प्राचीने संसर्पाख्ये असंक्रान्ते न प्रवर्त्तन्ते, किन्तूत्तराऽसंक्रान्तमासे एव प्रवर्त्तन्ते' ।

(पुरुषार्थचिन्तामणि)

किञ्च "......अनर्हः सर्वकर्मसु" यहां "सर्वकर्मसु" का अर्थ अर्थसंकोच द्वारा "अन्यगतिकसर्वकर्मसु" यह करने पर तो इस प्रकार के वाक्यों का संसर्प की कर्मार्हता से कोई विरोध नहीं रहता (देखें पृष्ठ ७२), क्योंकि संसर्प की अनधिमासता (त्रिशत्तिथ्यात्मकता) के कारण उसके मासप्रयुक्त कर्म अनन्यगतिकतया उसीमें अनुष्ठित करने ही पड़ते हैं ।

प्रश्न (५)— संसर्प को यदि 'संसर्पशुद्धिपक्ष' के अनुसार अनधिमास मान भी लिया जाए तो भी उसे शुद्ध, कर्मार्ह मानना ठीक नहीं है, क्योंकि संक्रान्तिहीन मास को नपुंसकत्वेन शास्त्र अशुद्ध मानते हैं ?

उत्तर— प्रश्न (४) का उत्तर पर्याप्त है । किञ्च— "संसर्पाशुद्धिपक्ष" वाले भी तो अव्यवहित संसर्प को संक्रान्तिहीन (नपुंसक) होने पर भी शुद्ध मानते हैं ।

प्रश्न (६)— व्यवहित संसर्प को अनधिकमास (त्रिंशत्तिथ्यात्मक) मान लेने पर तत्परवर्त्ती क्षयमास तक के मासों की संज्ञाएं 'मेषादिस्थे सवितरि......' एवं 'मीनादिस्थो रविर्येषाम्......' इत्यादि आर्षप्रणीत नामकरणनियमों का उल्लंघन करती हैं, क्या यह अयुक्त नहीं है ?

उत्तर— क्षयमास - संसर्पसम्बन्धी शास्त्रवाक्य ऐसा उल्लंघन करने की अनुमति देते हैं। वसिष्ठ का "चैत्रादिमासेषु यथाक्रमेण......" वाक्य तो इस प्रकार के नामकरणनियमोल्लंघन का स्पष्ट समर्थन करता है (देखें पृष्ठ २६ से ३२)।

किञ्च संसर्पाशुद्धिपक्षानुसार भी अव्यवहित संसर्प को शुद्ध, त्रिंशत्तिथ्यात्मक मानने पर अंहस्पति (द्विसंक्रान्त) मास का नामकरण परम्परागत मास-नामकरणनियमों का उल्लंघन करता है—द्विसंक्रान्त होने से अंहस्पति मास के "मेषादयो द्वादशस्युः चैत्रादिषु यथाक्रमम्" इस नियमानुसार दो नाम होने चाहिएं, अपि च "मीनादिस्थो रविर्येषामारम्भप्रथमे क्षणे। भवेत्तेऽब्दे चान्द्रमासाश्चैत्राद्या द्वादश स्मृताः ॥" इस नियमानुसार द्विसंक्रान्त मास का नाम मास-प्रारम्भिकक्षणकालीन सूर्यराशि के अनुसार होना चाहिए। लेकिन "संसर्पाशुद्धिपक्ष" के अनुयायी इन दोनों मासनामकरण-नियमों को तिरस्कृत करके केवल "मेषादिस्थे सवितरि......" इसी के अनुसार (अमान्तकालिक सूर्यराशि के अनुसार) द्विसंक्रान्तमास का नामकरण करते हैं। यहां पर वे अन्य दो आर्षप्रणीत नामकरण-नियमों का उल्लंघन करने के दोषभाक् तो हैं ही। ध्यान रहे— "मीनादिस्थो रविर्येषाम्......" यह नियम असंक्रान्ति एवम् ससंक्रान्ति— दोनों प्रकार के मासों

के नामकरण के लिए प्रयुक्त होता है, लेकिन "संसर्पाशुद्धिपक्ष" वाले अव्यवहित संसर्प की स्थिति में अंहस्पतिमास के नामकरण में इसे तिरस्कृत करते हैं।

अपि च अंहस्पति को मासयुगलात्मक मानने पर उसकी तिथियों के पूर्वार्ध को पूर्वमास की और उत्तरार्ध को उत्तरमास की संज्ञा देना किसी भी आर्षप्रणीत मास-नामकरण-नियम से सम्बन्ध नहीं रखता।

प्रसङ्गवश यहां मासयुगलसिद्धान्त के समर्थकों से हम यह प्रश्न भी करना चाहते हैं कि—संसर्पशुद्धिपक्ष पर आप मासनामकरण-नियम के उल्लंघन का व्यर्थ का दोषारोपण (जिसका मीमांसा एवं शास्त्रीय प्रमाणों से हम पूरी तरह पृष्ठ २९ पर प्रतिवाद कर चुके हैं) करते हैं, क्या आप तिथ्यर्धवाक्यानुसार अंहस्पति की तिथियों को दो-दो तिथियां मान कर तिथि की सूर्यचन्द्रीय-द्वादशांशान्तरात्मक परिभाषा का उल्लंघन नहीं कर रहे हैं ?

प्रश्न (७)—कोई भी अधिमास अपने पूर्ववर्त्ती अधि-मास से या तो २ वर्ष ११ मास बाद, या २ वर्ष १० मास बाद या २ वर्ष ४ मास बाद ही आया करता है —ऐसा विगत एवं आगामी अनेक वर्षों के अधिकमासों की सूची से ज्ञात होता है। इसके अनुसार सं. २०३९ में आश्विन

को ही अधिमास माना जाए, फाल्गुन को नहीं, क्योंकि आश्विन अपने पूर्ववर्त्ती अधिमास (सं. २०३७ के ज्येष्ठ अधिमास) से २ वर्ष ४ मास बाद आ रहा है, फाल्गुन तो २ वर्ष ६ मास बाद आएगा ?

उत्तर— अधिमासों की घटना के ये ऊपर बतलाए गए तीन अन्तराल निश्चित नहीं हैं। क्षयमास न होने पर भी ये व्यभिचरित होते दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ नीचे कोष्ठक में कुछ शकाब्द उद्धृत किए गए हैं, जिनमें घटित अधिमासों का पारस्परिक अन्तर २ वर्ष ६ मास एवम् २ वर्ष ५ मास है—

शकाब्द	दृक्पक्षानुसार अधिकमास	अन्तराल
१८१०	चैत्र	२ वर्ष ५ मास
१८१२	भाद्र.	
१८२६	ज्येष्ठ	२ वर्ष ६ मास
१८२८	फाल्गु.	
१८४५	ज्येष्ठ	२ वर्ष ६ मास
१८४७	फाल्गु	
२१११	चैत्र	२ वर्ष ५ मास
२११३	भाद्र.	

ध्यान रहे—इन शकाब्दों में क्षयमास नहीं है। एक बात और यहां द्रष्टव्य है— जिस प्रकार सं. २०३९ में फाल्गुन अधिमास अपने पूर्ववर्त्ती ज्येष्ठ अधिमास के बाद घटित होने जा रहा है, ठीक उसी प्रकार शकाब्द

१८२८ तथा १८४७ में भी था अर्थात् वहां भी फाल्गुन अधिकमास से पहिले ज्येष्ठ अधिमास आया था।

इस प्रकार स्पष्ट है—अधिमासों के इन उपरोक्त अन्तरालों द्वारा प्रामाणिकरूपेण यह निर्णय करना सम्भव नहीं है कि—क्षयमास के पूर्वोत्तरवर्त्ती दो असंक्रान्तमासों में से कौन सा असंक्रान्तमास अधिकमास है।

प्रश्न (८)— क्षयमास से अव्यवहित रहने वाले असंक्रान्तमास को ही अनधिकमास माना जाए, चाहे वह अव्यवहितपूर्व हो या अव्यवहितपर। इससे असंक्रान्तमास और क्षयमास के मध्यवर्त्ती मासों के नाम परम्परागत नामकरणपद्धति का उल्लंघन नहीं करेंगे। यदि दोनों ही व्यवहित हों तो क्षयमास से परवर्त्ती असंक्रान्तमास को ही शुद्ध (अनधिकमास) माना जाए। क्या इस व्यवस्था में कोई दोष है?

उत्तर— सभी शास्त्रवाक्य क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास को ही अनधिकमास मानने का निर्देश करते हैं। व्यवहितपूर्व को अनधिमास मानने पर परम्परागत नामकरणपद्धति के उल्लंघन की बात भी अर्थहीन है, क्योंकि महाभारत एवं वसिष्ठ के वाक्यों तथा मीमांसा द्वारा यह उल्लंघन विहित है (देखें पृष्ठ २९)। यदि इसे फिर भी प्रश्नकर्त्ता महानुभाव उल्लंघन समझते हैं, तब तो उन्हें दोनों असंक्रान्तमासों की व्यवहितस्थिति में भी यह उल्लंघन सहन नहीं करना चाहिए, अर्थात्—उस स्थिति में

उनका यह कहना गलत होगा कि तब क्षयपरवर्त्ती असंक्रान्त मास को अनधिक मान लेना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने पर भी क्षयमास के परवर्त्ती असंक्रान्त मास तक के मासों के नाम परम्परागत नामकरणपद्धति के अनुकूल नहीं होंगे । यदि प्रश्नकर्त्ता परम्पराप्राप्त नामकरणप्रणाली के संरक्षण में इतने दत्तावधान हैं तब तो उन्हें दोनों (क्षयपूर्वापरवर्त्ती) असंक्रान्तमासों की व्यवहितस्थिति में दोनों असंक्रान्तमासों को ही संसर्पाशुद्धिपक्षानुयायियों की भान्ति अधिकमास मानना होगा ।

किञ्च यदि दोनों में से एक असंक्रान्तमास क्षयमास से अव्यवहितपर हो तब भी उस असंक्रान्त मास को अनधिक-मास मानने पर उस (असंक्रान्त)मास का नाम परम्पराप्राप्त नामकरणपद्धति के अनुकूल नहीं रहेगा —यह बात शायद प्रश्न-कर्त्ता के ध्यान में नहीं आई । उदाहरणार्थ सं. २०३९ में फाल्गुनमास क्षयमास से अव्यवहितपर असंक्रान्तमास है । यदि इसे प्रश्नकर्त्ता के सुझाव के अनुसार अनधिमास माना जाए तो इस असंक्रान्त फाल्गुन को माघ मानना होगा ।

ध्यान रहे—परम्परागत नामकरणपद्धति में असंक्रान्त मास का नामकरण हमेशा 'मीनादिस्थो रविर्येषामारम्भ-प्रथमे क्षणे । भवेत्तेऽब्दे चान्द्रमासाश्चैत्राद्या द्वादश-स्मृताः ॥' इस नियम के अनुसार ही होता आया है ।

सं. २०३९ का क्षयपरवर्त्ती असंक्रान्तमास फाल्गुन ही है, परन्तु प्रश्नकर्त्ता के सुझाव का अनुसरण करने पर (अर्थात् इसे शुद्ध "अनधिकमास" मानने पर) तो यह मास फाल्गुन न रह

कर माघ हो जाएगा। यह स्पष्टरूप में परम्परागत नामकरण-पद्धति का उल्लंघन है।

एक बात और ध्यान दिलाने योग्य है— प्रश्न नं. (७) और (८) एक ही विद्वान् द्वारा रखे गए हैं। देखिए—इन दोनों प्रश्नों में कोई सामञ्जस्य नहीं है। प्रश्नकर्त्ता किसी एक सिद्धान्त पर स्थिर नहीं है। यदि प्रश्नकर्त्ता द्वारा प्रश्न (७) में दिए गए अधिमासों के मध्यवर्त्ती अन्तराल के नियम को ठीक मान लिया जाए तो इसी प्रश्नकर्त्ता द्वारा प्रश्न (८) में दिए गए सिद्धान्त के अनुसार क्षयपूर्वापरवर्त्ती दोनों व्यवहित असंक्रान्त-मासों में से परवर्त्ती असंक्रान्तमास को अनेकदा शुद्ध (अनधिक-मास) मानना सम्भव नहीं हो पाएगा, क्योंकि, यह सम्भव है, वह परवर्त्ती व्यवहित असंक्रान्तमास अपने पूर्ववर्त्ती अधिकमास से प्रश्न (७) में निर्दिष्ट तीन अन्तरालों से कम या अधिक अन्तराल पर घटित हो रहा हो। इस प्रकार के अनेक उदाहरण ढूंढे जा सकते हैं।

प्रश्न (७) और (८) में निर्दिष्ट नियम अनेकदा परस्पर विरोधीरूप में उपस्थित होते हैं, इसका एक उदाहरण देखिए—

सौरपक्षानुसार वि. सं. २१०२ में ज्येष्ठ अधिकमास और वि. सं. २१०४ में पौष क्षयमास तथा इस क्षयमास के पूर्वा-परवर्त्ती दो असंक्रान्तमास क्रमशः मार्गशीर्ष और फाल्गुन होंगे। यहां प्रश्न (८) के नियमानुसार असंक्रान्तमास मार्गशीर्ष अधिकमास नहीं होगा, क्योंकि वह क्षयमास से अव्यवहित है। यहीं पर असंक्रान्त फाल्गुन भी प्रश्न (७) के नियमानुसार अधिकमास नहीं हो सकता, क्योंकि यह अपने पूर्ववर्त्ती ज्येष्ठ

अधिमास से २ वर्ष ६ मास के अन्तराल पर है।

इस प्रकार की समस्याएं प्रश्न (७) और (८) के उपस्थापक विद्वान् के मतानुसार भविष्य में अनेकदा उत्पन्न होंगी। स्पष्ट है—इन दोनों प्रश्नों में निर्दिष्ट नियम दोषपूर्ण हैं।

प्रश्न (६)— सं. २०३६ में यदि आश्विन को अधिकमास न मान कर फाल्गुन को अधिकमास मान लिया गया तो इस वर्ष दीवाली १६ अक्तूबर को तथा वसन्तपञ्चमी १६ जनवरी को पड़ेगी। दीवाली और वसन्तपञ्चमी की ये तारीखें इन पर्वों की ऋतुओं के अनुरूप नहीं हैं। क्यों न आश्विन को अधिमास मान कर इन्हें इनकी अनुरूप ऋतुओं में मनाया जाए ?

[यह प्रश्न भी, प्रश्न (७) और (८) के उपस्थापक द्वारा ही रखा गया है।]

उत्तर— १६ अक्तूबर को दीवाली और १६ जनवरी को वसन्तपञ्चमी विगत अनेक वर्षों में आ चुकी हैं, भविष्य में भी ये पर्व इन तारीखों को आएंगे। देखिए—

वि सं. २००१, २०२०, २०६६ और २०८५ में दीवाली १६ अक्तूबर को ही हुई थी और होगी।

इसी प्रकार वसन्तपञ्चमी पर्व ई. सन् १९६४ में १६ जन. को तथा ई. १९४५ में १८ जनवरी को आ चुका है। ई. सन् २०२६ में फिर यह पर्व फिर १६ जनवरी को ही आएगा। ई. सन् १९५३ में यह २० जनवरी को, ई. सन् १९६१ और १९७२ में २१ जनवरी को आ चुका है।

नीचे ई. सन् १९४५ से २०२९ तक के वे वर्ष उद्धृत किए गए हैं, जिनमें वसन्तपञ्चमी १८ जनवरी से २५ जनवरी के मध्य आई हैं—

ई. सन्	वसन्तपञ्चमी की तारीख
१९४५	१८ जनवरी
१९५०	२३ जनवरी
१९५३	२० जनवरी
१९५८	२५ जनवरी
१९६१	२१ जनवरी
१९६४	१९ जनवरी
१९६९	२२ जनवरी
१९७२	२१ जनवरी
१९७७	२४ जनवरी
१९८०	२२ जनवरी
१९८७	२३ जनवरी
१९९१	२१ जनवरी
१९९९	२२ जनवरी
२००७	२३ जनवरी
२०१०	२० जनवरी
२०१८	२२ जनवरी
२०२६	२३ जनवरी
२०२९	१९ जनवरी

स्पष्ट है—यह पर्व नाममात्रेण वसन्तपञ्चमी है, वसन्त-ऋतु से इसका अभी तक बहुत ही कम (न के बराबर) सम्बन्ध

है। क्या प्रश्नकर्त्ता बतलाएंगे— ऊपर उद्धृत वर्षों में भी ऋतु-अनुकूलता के अभाव में वसन्तपञ्चमी पर्व को वे इन निर्दिष्ट तारीखों में मनाया जाना गलत समझते हैं ?

इस उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है—ऋतु की अनुपयुक्तता के आधार पर सं. २०३९ में फाल्गुन को अनधिमास नहीं प्रमाणित किया जा सकता। यदि ऋतु के अनुसार ही हम पर्वों को अनुष्ठित करने का आग्रह रखेंगे तो हमें अनेक बार गणितागत चैत्रादि चान्द्रमासों की उपेक्षा करने के लिए बाधित होना पड़ेगा।

एक विशेष बात यहां समझ लेना आवश्यक है— हमारे सभी चान्द्रपर्व विगत शताब्दियों में अपनी वर्त्तमान मध्यम इंग्लिश तारीखों (Average Gregorian dates) से पहिले ही घटित होते थे। अयनचलन के कारण प्रत्येक ७१ वर्ष बाद प्रत्येक चान्द्रपर्व की मध्यम इंग्लिश तारीख एक दिन आगे खिसकती जा रही है। यह एक ध्यातव्य आश्चर्यंकर बात है कि हमारे इस काल में वसन्तपञ्चमी का पर्व वस्तुतः वसन्त ऋतु में घटित नहीं होता है[1]। वर्त्तमान काल (अयनांश-स्थिति) में यह पर्व लगभग १८ जनवरी और १८ फर. के मध्य पड़ता है, जबकि वसन्तऋतु इन दिनों लगभग १९ फरवरी से प्रारम्भ होती है। अब ज्यों-ज्यों अयनांशमान बढ़ता रहा है, त्यों-त्यों आगे-आगे यह पर्व वसन्तऋतु में प्रविष्ट होता जा रहा है।

---

१. यह कहना ज्यादा उपयुक्त होगा कि यह पर्व आज तक वसन्तऋतु में घटित ही नहीं हुआ है।

प्रश्न (१०)— जबकि 'संक्रान्तिरहितो मासो यो वा संक्रान्तियुग्मयुक् । पूर्वः संसर्पमासः स्यादंहस्पतिरथापरः । मलमासाविमौ प्रोक्तौ सर्वकर्मबहिष्कृतौ ॥' —इस वाक्य में संसर्प और अंहस्पति—दोनों को मलमास लिखा गया है, तब 'संसर्पशुद्धिपक्ष' वाले संसर्प को मलमास क्यों नहीं मानते ?

उत्तर— मलमास अधिमास का पर्याय ही है। पूर्वक्त विवेचन से संसर्प का अनधिकमासत्व सिद्ध ही है, अतः संसर्प को मलमास नहीं कहा जा सकता। उपरोक्त वचन में संसर्प शब्द, जैसा कि हम पहिले (पृष्ठ ७० पर) भी बतला चुके हैं, सामान्य असंक्रान्तमास का ही वाचक है, क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास का नहीं। क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास को तो मलमास स्वीकार ही नहीं किया गया। इसके बारे में अनेक उद्धरण पहिले दिए जा चुके हैं। यहां इसीके बारे में म. म. वाचस्पति मिश्र द्वारा प्रणीत 'द्वैतनिर्णय' का यह उद्धरण भी ध्यान देने योग्य है, जिसमें संसर्प और अंहस्पति को मलमास नहीं माना गया। संसर्प के बारे में तो यहां स्पष्टतया कहा गया है कि—क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास में मलमासत्व नहीं माना जाता—

'अथ प्रथमचरमौ विसंक्रान्तौ मध्यमस्तु द्विसंक्रान्तः । तत्रापि नैकस्मिन्नब्दे द्वौ मलमासौ भवतः—

दिवसस्य हरत्यर्कः षष्टिभागमृतौ ततः ।

करोत्येकमहश्छेदं तथैवैकं च चन्द्रमाः ॥
एवमर्धतृतीयानामब्दानामधिमासकम् ।

इति वचनानुवादरूपज्योतिर्वचनविरोधात् । तथा चाद्यन्तयोर्मलमाससम्भावनायाम् अन्त्यस्य मलमासत्वे भीमपराक्रमवचसा व्यवस्थितौ आद्यस्याऽसंक्रान्तस्याऽपि न मलमासत्वम् वचनबलादेव ।'

"स्मृतिकौस्तुभ" में अनन्तदेव ने भी "तत्राधिमासो नामाऽसंक्रान्तो मलमासः........." इत्यादि वाक्य द्वारा (देखें पृष्ठ ७३) संसर्प और अंहस्पति दोनों को मलमास अस्वीकार किया है।

अंहस्पति (द्विसंक्रान्त)मास को कुछेक ने मलमास कहा है, लेकिन यहां मलमास का अभिप्राय उन्होंने अधिमास नहीं लिया। सत्यव्रत का वाक्य है—

राशिद्वयं यत्र मासे संक्रमेत दिवाकरः ।
नाधिमासो भवेदेष मलमासस्तु केवलः ॥

अंहस्पति को मलमास यदि मान भी लें तो भी उसे मासिक-कृत्यों के लिए वर्जित नहीं किया जा सकता, क्योंकि अनन्य-गतिकता के कारण उनका उसी में विधान हो सकता है, अन्यथा वे लुप्त हो जाएंगे।

प्रश्न (११)— 'स्यादाद्यो गणितागतः'—मुनीश्वर के इस वचन के अनुसार क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्त मास ही गणित

से उपलब्ध होने से अधिमास है, क्षयपरवर्त्ती नहीं—क्या यह ठीक है ?

उत्तर— क्षयमास से पूर्वापरवर्त्ती दोनों अधिकमास (असंक्रान्तमास) गणित से ही प्राप्त होते हैं, केवल पूर्ववर्त्ती को ही गणितप्राप्त कहना गलत है। यदि परवर्त्ती असंक्रान्तमास गणित से प्राप्त नहीं तो वह किस प्रकार हमें प्राप्त हुआ है—इसका उत्तर मुनीश्वर क्या देते, हमें कुछ समझ में नहीं आता।

क्षयपूर्वापरवर्त्ती दोनों अधिमास (असंक्रान्तमास) सूर्य-चन्द्रान्तर एवं सूर्यसंक्रमण की गणित द्वारा ही निष्पन्न होते हैं, लेकिन पहिले अधिमास द्वारा शून्यीकृत अधिशेष दो-तीन मास बाद ही क्षयमास आने पर पुनः पूर्ववत् लगभग उतनी ही मात्रा (मासतुल्यमान) लेकर प्रकट हो जाता है। स्पष्ट है—क्षयमास द्वारा पूर्वप्रवृत्त अधिमास अपाकृत (cancelled) हो जाता है। यही कारण है—सभी संहिता, स्मृति एवम् निबन्धकार उस (पूर्ववर्त्ती) अधिमास को अधिमास नहीं स्वीकार करते, क्योंकि वह अपरिपक्व अवस्था में घटित होने से अधिशेष को अस्थायीरूप से ही शून्य कर पाता है। लेकिन परवर्त्ती अधिमास स्थायीरूप से अधिशेष को शून्य कर पाता है[1], इसी लिए शास्त्रकारों ने उसे ही अधिमासत्वेन स्वीकार करने का आदेश दिया है।

मुनीश्वर ने क्षयपरवर्त्ती अधिमास को क्षयानुरोधी (केवल क्षयमास के कारण उत्पन्न) कह कर उसे अनधिमास सिद्ध करने

---

१. "स्थायीरूप से अधिशेष के शून्यीकरण" का अर्थ है कि— तब अधिशेष कम से कम २८ मास बाद ही अधिमास बन कर शून्य होगा, इस से पूर्व नहीं।

का प्रयास किया है। लेकिन यहां पर हमारा यह कहना कि—"क्षयपूर्ववर्त्ती अधिमास क्षयमास द्वारा अपाकृत (cancelled) कर दिया जाता है अतः उसे अधिमास नहीं मानना चाहिए" अधिक तर्कसगत है, संहिता, स्मृति, पुराण एवं निबन्धकारों द्वारा भी इसी मत का समर्थन किया गया है।

प्रश्न (१२)— 'कार्त्तिकादिषु मासेषु यदि स्यातां मलिम्लुचौ। सर्वकर्महरः प्रोक्तः पूर्वस्तत्र मलिम्लुचः॥'—क्या यह वचन क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास को अशुद्ध (अधिमास) और क्षयपरवर्त्ती असंक्रान्तमास को शुद्ध (अनधिमास) नहीं बतलाता?

उत्तर— इसका उत्तर पृष्ठ ७८ पर देखें। अपि च—यद्यपि इस वाक्य के प्रतीयमान अर्थ का परम्परया अनुसरण करने वाले बंगाल के कुछ पंचाङ्गकारों ने सं. २०३९ के क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास आश्विन को अशुद्ध (अधिकमास) एवं क्षयपरवर्त्ती असंक्रान्तमास फाल्गुन को अनधिमास माना है, लेकिन बंगाल के ही अनेक विद्वान् निबन्धकारों ने इस वाक्य में आए "सर्वकर्महरः" शब्द का **अर्थ "सर्वमांगल्यकर्महरः"** ही किया है। 'शुद्धिकौमुदी' में गोबिन्दानन्द ने लिखा है—

'कार्त्तिकादिषु मासेषु........' इति यद् वचन लिखितं तत् मदनपारिजात–हेमाद्रि–कालमाधवीय–कालचिन्तामणिप्रभृतिषु दाक्षिणात्य–पाश्चात्य–संग्रहकारो ल्लिखित-पूर्वोपन्यस्तवचनविरोधान्निर्मूलमेव। समूल

त्वाभिमाने तु प्रागुक्तानेकवचनविरोधात् 'नो मांगल्यं विवाहश्चे' ति वराहसंहितावचनैकवाक्यतया च कर्म-पदमत्र मांगल्यकर्मपरम् । इत्थं च 'तयोः मलिम्लुच-मासयोः यः पूर्वः भानुलंघिताख्यो मलिम्लुचमासः सः सर्वमांगल्यकर्महरः प्रोक्तः मुनिभिः' इत्यर्थः ।

कोई भी संहिता, स्मृति, पुराण या निबन्धकार क्षयपरवर्त्ती असंक्रान्तमास को शुद्ध(अनधिमास) मानने का निर्देश नहीं करता, अतः इस वाक्य का उपर्युक्त अर्थ ही इसे सावकाश बना सकता है, अन्यथा इसे निरवकाश ही रहना होगा।

क्षयमास से परवर्ती असंक्रान्तमास को प्रत्येक स्थिति में शुद्ध (अनधिकमास) मानने वाला यह पक्ष 'बंगपक्ष' या 'रघुनन्दनपक्ष' के नाम से प्रसिद्ध है। यह "बंगपक्ष" "संसर्पाशुद्धिपक्ष" एवं "संसर्पशुद्धिपक्ष" से सर्वथा विलग है। इस बंगपक्ष के अनुसार क्षयमास किसी भी स्थिति में मासद्वयात्मक नहीं होता, जिससे पृष्ठ ४७ पर दी गई उन अव्यवस्थाओं से यह पक्ष भी "संसर्पशुद्धिपक्ष" की भान्ति सर्वथा मुक्त है, जो "संसर्पाशुद्धिपक्ष" से उत्पन्न होती हैं। यह पक्ष मासयुगलीकरण एवं तिथ्यर्ध-वाक्यों को निर्मूल मानता है, इस दृष्टि से यह पक्ष "संसर्प-शुद्धिपक्ष" का पक्षपाती है। स्पष्ट है, कि—बंगपक्ष मासयुगलीकरण से उत्पन्न पंचाङ्गसम्बन्धी अनियमितताओं को सहन नहीं करता, इस दृष्टि से यह पक्ष वैज्ञानिक है। इसमें केवल एक ही दोष है—यह क्षयपरवर्ती असंक्रान्तमास को शुद्ध मानता है, जबकि सभी शास्त्र पूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास को ही शुद्ध मानते हैं।

ध्यान रहे—बंगदेश के अनेक मूर्धन्य वर्तमान पंचाङ्ग-कार ज्योतिषाचार्य श्रीषष्ठीचरण ('विशुद्धसिद्धान्त-पञ्जिका' के सम्पादक) आदि भी इस पक्ष का समर्थन नहीं करते। सं. २०३९ के अपने पंचाङ्गों में संसर्प-शुद्धिपक्षानुसार ही इन्होंने आश्विन को ही शुद्ध घोषित किया गया है।

प्रश्न (१३)— संसर्पमात्र को अनधिकमास मान लेने पर अंहस्पति(क्षय)मास मासयुगलात्मक कभी नहीं होगा। क्या इससे मासयुगलीकरणवाक्य निरर्थक(निरवकाश) नहीं हो जाएंगे?

उत्तर— इसका उत्तर पृष्ठ ३९ पर देखें।

अपि च संसर्प को अनधिमास मानने का निर्देश करने वाले ये शास्त्रवाक्य भी निरुद्देश्य नहीं हैं, इनका एकमात्र उद्देश्य क्षयमास की मासयुग्मता का अपाकरण ही है। इन वाक्यों का इसके अतिरिक्त अन्य कोई उद्देश्य हो भी नहीं सकता। पृष्ठ ४७ पर दिखलाई गई क्षयमास की मासयुग्मता से उत्पन्न होने वाली अक्षम्य अव्यवस्थाओं का समाधान तभी सम्भव है जब कि संसर्प को प्रत्येक स्थिति में अनधिमास माना जाए—यह बात तो स्पष्ट है। जबकि शास्त्रवाक्यों द्वारा संसर्प की शुद्धता के आपादन का उद्देश्य सुस्पष्टरूपेण हमें उपलब्ध है, तब उसे निरुद्देश्य या केवल वाचनिक कदापि नहीं कहा जा सकता।

क्योंकि क्षयमास की मासयुग्मता का अपाकरण ही संसर्प की अनधिमासता का अनन्य प्रयोजन है, अतः व्यवहित संसर्प को अधिमास मानना न्याय्य नहीं है, कारण—इससे क्षयमास मासयुग्म बन जाता है। जब संसर्पमात्र को शुद्ध (अनधिमास) माना जाएगा तब मासयुगलीकरण वाक्य तो निरर्थक होंगे ही।

"बंगपक्ष" एवं मैथिलपरम्परा भी मासयुगलीकरण वाक्यों का आदर नहीं करती, उन्हें उन्होंने सर्वथा निरवकाश माना है। कृष्णम्भट्ट, वाचस्पतिमिश्र, हेमाद्रि, म. म. अमृतनाथ, वैद्यनाथ आदि मीमांसक भी इन वाक्यों को निरवकाश मानते हैं— इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी वाक्य सावकाश होने ही चाहिएं, ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं है। तत्त्वविनिश्चय के लिए यावदुपलब्ध वाक्यों का समन्वय अनिवार्य है, ऐसा सिद्धान्त सभी मीमांसक स्वीकार भी नहीं करते। श्री वैद्यनाथ दीक्षित ने तो इस क्षयमास—संसर्पमास के विषय में उपलब्ध अव्यवस्थाप्य वाक्यों का तिरस्कार करने का स्पष्ट आदेश दिया है (देखें पृष्ठ ८५) पर।

जो लोग क्षयमास आने पर एक मास का लोप स्वीकार करते हैं, उन्हें अंहस्पति को मासयुग्म मानना पड़ता है। अनन्तदेव ने "स्मृति कौस्तुभ" में मासलोप के सिद्धान्त का प्रतिवाद किया है—

सत्यामेव तिथौ सूर्योदयस्पर्शाभावेन क्षयव्यवहारवत् सत्येव मासे तदुचितराशिस्थरवियुक्ताद्यक्षणाभावात् क्षय-व्यवहारो न तु कस्यचन क्षयः।

"वीरमित्रोदय" के समयप्रकाश में भी क्षयमास को एक-मासात्मक मानने वाले मत का भी निर्देश किया गया है—

अन्ये तु 'मेषादिस्थे सवितरि' इति वचनोक्त-लक्षणानुसारात् क्षये पूर्वराशिस्थे रवौ दर्शान्त्यसमाप्त्यभावात् उत्तरराशिस्थरवावेव तत्समाप्तेः (क्षयमासस्य) उत्तरमास-रूपत्वमेवेत्याहुः ।

स्पष्ट है— क्षयमास को एकमासात्मक मानने वाले ये विद्वान् मासयुगलीकरण वाक्यों का तिरस्कार करते हैं।

"मासमीमांसा"कार भी क्षयमास की दो संज्ञाओं का विरोध करते हुए, "तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वः........." इस वाक्य की व्यवस्था इस प्रकार करते हैं—

व्याघ्रपाद वचनम्[1] ('तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वः......... इत्यादि') स्वतन्त्रतया क्षयमासस्य मासद्वयारम्भकतिथि-त्वेन चिन्तनरूपामुपासनां विधत्ते, न तु संज्ञाद्वयसमावेशम्, बुधैश्चित्त्यौ-इत्येव स्मरणात् । क्षयमासाधिकरणककर्माङ्ग-मुपासनाविशेषं वा विधत्ते— 'बृहति स्तूयमाने समुद्रं मनसा ध्यायेद्रथन्तरे पृथिवीम्' इतिवत् ।

---

१. "मासमीमांसा"कार ने ही "तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वः......' इस वचन को व्याघ्रपाद का वचन लिखा है, शेष निबन्धग्रन्थ इस वाक्य के वक्ता—लेखक के बारे में मूक हैं। आश्चर्य है— काशिराजन्यास वाराणसी द्वारा प्रकाशित "अधिमास-क्षयमास विचार"नामक पुस्तिका में इस वाक्य को भविष्यपुराण का लिखा है। इन दोनों में किसे प्रमाणिक माना जाए ?

देखिए --मीमांसक गोकुलनाथोपाध्याय इस "तिथ्यर्धवाक्य" की उस व्याख्या के पक्ष में नहीं है, जिससे क्षयमास दो संज्ञाओं वाला सिद्ध होता है। अर्थात् वे मासयुगलीकरण सिद्धान्त को अग्राह्य मानते हैं। यदि इस तिथ्यर्धवाक्य की गोकुलनाथोपाध्याय द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त व्याख्या मान ली जाए तो यह वाक्य संसर्पमात्र को शुद्ध मानने पर भी सावकाश रहेगा। गोकुलनाथ की इसी व्यवस्थाशैली का अनुसरण यदि "मासयुग्मं विचिन्त्यम्" आदि वाक्यों के लिए भी किया जाए तो ये वाक्य भी सावकाश हो जाएंगे। लेकिन यह व्यवस्था "क्षयमास में अनुष्ठित किए जाने वाले कृत्यों के अनुष्ठान के अङ्ग के रूप में क्षयमास को दो मासों के मिश्रण के रूप में चिन्तनमात्र की ही अनुमति देती है. क्षयमास को वस्तुतः (क्रियात्मकरूपेण) दो मासों का मिश्रण मान कर उसमें दो मासों के मासिक कृत्यों के अनुष्ठान की यह विरोधी है।

हम समझते हैं— गोकुलनाथोपाध्याय की यह व्यवस्था मासयुगलीकरण के समर्थक अनेक वाक्यों को सावकाश बनाने में सहायक होगी, इससे किसी प्रकार की व्रत-पर्वादि सम्बन्धी वे अव्यव्यवस्थाएं भी उत्पन्न नहीं होगी जो क्षयमास को क्रियात्मकरूपेण मासयुगल मानने पर उत्पन्न होती हैं।

सारांश यह है— यदि कोई वाक्य व्यवस्थापित हो सकता है तो उसे अवश्य व्यवस्थापित करना चाहिए, लेकिन उपपत्ति-शून्य, निर्मूल वाक्यों को भी व्यवस्था के नाम से सावकाश बनाने का वह प्रयास न्याय्य नही माना जा सकता, जिससे अनेक अक्षम्य अव्यवस्थाएं उत्पन्न हों। श्रीकृष्णम्भट्ट, अनन्तदेव आदि मीमांसकों ने भी इन मासयुगलीकरण वाक्यों की निर्मूलता को

दृष्टि में रखते हुए इन्हें अनादृत किया है, हम भी इस विषय में इनका पूर्ण समर्थन करते हैं।

प्रश्न (१४)— संसर्पशुद्धिपक्ष वाले लोग संसर्प में विवाह आदि मंगलकृत्य तो वर्जित करते हैं लेकिन वे मासिक व्रत-पर्वों (नवरात्र, विजयादशमी आदि) का उस मास में अनुष्ठान करते हैं, क्या यह विरोध नहीं है ?

उत्तर— शास्त्रवचनों के अनुसार ही संसर्प में ग्राह्य एवं अग्राह्य कृत्यों का यह निर्णय किया गया है। शास्त्र ही ऐसा विधान करते हैं कि संसर्प और अंहस्पति में विवाहादि मंगल कार्य नहीं करने चाहिए, अन्य श्रौत एवं स्मार्त्त कार्य उनमें करने चाहिएं (प्रमाण देखें पृष्ठ ७७)। संसर्पशुद्धिपक्षधर भी इन्हीं शास्त्रवाक्यों का पालन करते हैं। इसमें विरोध या अनौचित्य कैसा ?

किञ्च संसर्पशुद्धिपक्ष वाले भी संसर्प एवम् क्षयमास में मासिककृत्य तो करते हैं, लेकिन विवाहादि मंगलकृत्य वहां वे नहीं करते।

गुरु-शुक्रास्त के दिनों में भी विवाहादिकृत्य नहीं किए जाते, लेकिन मासिक व्रत-पर्व वहां किए जाते हैं।

अतः शास्त्र प्रतिपादित कृत्याकृत्य में किसी प्रकार का कोई विरोध या अनौचित्य समझना असंगत है।

प्रश्न (१५)— सं. २०३९ में संसर्पशुद्धिपक्ष वालों ने माघक्षय लिखा है। 'क्षयः कार्त्तिकादित्रये'—भास्कर के इस वचनानुसार माघ तो क्षय नहीं हो सकता ?

उत्तर— जैसा कि पृष्ठ ७६ की टिप्पणी में स्पष्ट किया है, क्षयमास का अर्थ लुप्तमास कदापि नहीं है। भास्कर के इस वचनानुसार आपाततस्तु यही लगता है कि भास्कराचार्य लुप्तमास को ही क्षयमास मानते हैं, लेकिन यह ठीक नहीं है। क्योंकि भास्कर की ही परिभाषानुसार क्षयमास वह शुक्लादि चान्द्रमास है जिसमें दो संक्रान्तियां घटित हों (द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः)। सं. २०३९ में ता. १५-१-८३ से ता. १२-२-८३ तक के शुक्लादि चान्द्रमास में दो (मकर-कुम्भ) संक्रान्तियां हैं, अतः यह क्षयमास है। इस मास का नाम इन सभी संसर्पाशुद्धिपक्षानुयायियों ने "मेषादिस्थे सवितरि......" नियमानुसार अमान्तकालिक सूर्यराशि कुम्भ के कारण शुक्लादि माघमास माना है, अर्थात् इन्होंने ता. १५-१-८३ से ता. १२-२-८३ तक के इस द्विसंक्रान्त मास को माघसंज्ञा दी है, अतः स्पष्ट है— उनके मतानुसार भी माघ ही इस वर्ष क्षयमास (अंहस्पतिमास) है।

संसर्पाशुद्धिपक्षानुयायी पंचाङ्गकार इस माघमास को क्षयमास न मान कर पौषमास को जो "मेषादिस्थे सवितरि......" नियमानुसार पंचाङ्ग से लुप्त है, क्षयमास नहीं कह सकते, क्योंकि "द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः"— क्षयमास की परिभाषा उस लुप्त (पौष)मास में घटित नहीं होती। जो मास अस्तित्व ही नहीं रखता उसमें दो संक्रान्तियों की घटना की बात तो "खपुष्प पर बैठे दो भ्रमरों" की बात की तरह बेतुकी ही होगी। यदि संसर्पाशुद्धिपक्षाभिमानी यह कहें कि "मीनादिस्थो रविर्येषाम्" इस नियमानुसार सं. २०३९ के मकर-कुम्भ— दो संक्रान्तियों वाले इस मास का नाम आद्यक्षणिक-सूर्यराशि धनु के आधार पर पौष ही बनता है, तब उन्हें अपने पंचाङ्गों में इस द्वि-

संक्रान्तिमास को शुक्लादिपौष ही लिखना चाहिए था। लेकिन इस पक्ष के सभी अनुयायी पंचाङ्गकारों ने सं. २०३९ के अपने पंचाङ्गों में इस द्विसंक्रान्तमास को शुक्लादिमाघ ही लिखा है। आश्चर्य है ये सभी संसर्पाशुद्धिपक्षाभिमानी पंचाङ्गकार एवम् अन्य विद्वान् इस द्विसंक्रान्तमास की संज्ञा तो माघ ही करते हैं, लेकिन वे इसे क्षयमास न मान कर उस पौष को क्षयमास मानते हैं, जो उनके पंचाङ्ग में लुप्त है।

यदि "संसर्पाशुद्धिपक्ष"धर विद्वान् सं. २०३९ वि. के द्विसक्रान्तमास को "मेषादिस्थे सवितरि......" और 'मीनादिस्थो रविर्येषाम्......" इन दोनों नियमों के अनुसार पौष-माघ—ये दोनों संज्ञाएं देंगे (जैसा कि वे मासयुगलीकरण सिद्धान्त के अनुसार करते हैं) तो उनका यह कहना गलत हो जाता है, कि—माघमास भास्कर के "क्षयः कार्तिकादित्रये" इस वचन के अनुसार कभी क्षय नहीं होता, क्योंकि वे स्वयं यहां पर पौष-माघोभयात्मक मास को क्षयमास मानते हुए माघ को भी क्षयमास मान रहे हैं।

हम पहले (पृष्ठ ३९) पर स्पष्ट कर चुके हैं, कि—क्षयमास को दो मासों का मिश्रण नहीं बनाया जा सकता, अतः क्षयमास को एक ही नाम देना होगा। क्षयमास का वह नाम संसर्प को अनधिकमास बतलाने वाले शास्त्रवाक्यों के अनुसार दर्शान्तकालिक सूर्यराशि के आधार पर ही होगा। वैसे संसर्पाशुद्धिपक्षधर भी क्षयमास के नामकरण में दर्शान्तकालिक-सूर्यराशि को ही आधार मानते हैं।

इस प्रकार सिद्ध है, सं.२०३९ में संसर्पाशुद्धिपक्षाभिमानियों के मतानुसार भी माघ ही क्षय(अंहस्पति)मास है।

ध्यान रहे— 'क्षयमास' का अर्थ 'लुप्तमास' कदापि नहीं है। जिस प्रकार उदयास्पर्शी तिथि को क्षय की संज्ञा दी जाती है, वैसे ही दो संक्रान्तियों का स्पर्श करने वाले चान्द्रमास को क्षयमास की संज्ञा दी जाती है। जैसे क्षयतिथि का अर्थ लुप्ततिथि नहीं माना जाता, वैसे ही क्षयमास का अर्थ लुप्तमास नहीं लिया जा सकता। 'स्मृतिकौस्तुभ'कार ने भी यही बात कही है—

सत्यामेव तिथौ सूर्योदयस्पर्शाभावेन क्षयव्यवहारवत् सत्येव मासे तदुचित-राशिस्थरवियुक्ताद्यक्षणाभावात् क्षयव्यवहारो न तु कस्यचन मासस्य क्षयः।

द्विसंक्रान्तमास के लिए भास्कराचार्य द्वारा प्रयुक्त "क्षयाख्य" शब्द भी यही स्पष्ट करता है।

"भास्कराचार्य ने वर्तमानकालिक रविमन्दोच्चस्थितिवश केवल कार्तिकादि तीन मासों के ही क्षय होने की बात कही है, फिर सं. २०३९ में 'माघक्षय' कैसे आ गया"— यह प्रश्न उपस्थित होता है। सिद्धान्तशिरोमणि के तात्कालिक-सूर्यराशि-भोगमानों के अनुसार यह संभव है, उस समय केवल कार्त्तिक-मार्ग-पौष ये तीनों ही द्विसंक्रान्त होते हों। महामहोपाध्याय श्रीबापुदेव शास्त्री जी के सुपुत्र स्व. श्रीगणपतिदेवशास्त्री जी ने भी हमें संवत् २०२० के क्षयमासविवाद के दिनों में अपने एक पत्र में एतद्विषयक विचार भेजे थे। भविष्य में कभी इस विषय

पर गणितीयविवेचन पुरस्सर एक निबन्ध प्रकाशित करने का हम विचार रखते हैं।

हेमाद्रि ने अपने चतुर्वर्गचिन्तामणि में "ज्योतिर्ग्रन्थ" का यह निम्नांकित वचन उद्धृत किया है, जिसमें कार्त्तिकादि पांच मासों के क्षय होने की बात लिखी है—

संक्रान्ति-द्वयसंयुक्तः स मासोऽहस्पतिः स्मृतः।
चैत्रादिसप्तमासेषु न कदाचिद् भवेदयम्॥
ऊर्जादिपंचमासेषु कदाचन भवेद्यदा।
तदा द्वावधिकौ स्यातां तस्मिन्नूर्जादिपंचके॥

लेकिन सिद्धान्त द्वारा स्पष्ट है, कि एक ही समय में पांच मासों के क्षय होने की योग्यता नहीं हो सकती। अस्तु, हमारा अभिप्राय यह है, कि— 'क्षयः कार्तिकादित्रये' और ज्योतिर्ग्रन्थ के इस वाक्य को हम गणितोपलब्ध परिणाम के सम्मुख कोई महत्त्व नहीं देते। गणित द्वारा संवत् २०३९ में माघमास ही द्विसंक्रान्तरूप में हमें प्राप्त होता है। संसर्पाशुद्धिपक्ष वाले भी इस बात को स्वीकार करते हैं। फिर भी यदि वे माघ को क्षयाख्य नहीं मानते तो समझना होगा कि वे क्षयमास की द्विसंक्रान्तरूप परिभाषा के पक्ष में नहीं हैं।

प्रश्न (१६)— जबकि रविमन्दोच्च की अत्यल्प गति के कारण इस वर्तमान कलियुग में आश्विन, चैत्र आदि मास क्षय नहीं हो सकते, तब इन मासों के क्षय की स्थिति से उत्पन्न होने वाली व्रत-पर्वादिगत अव्यवस्थाओं की चर्चा क्या संगत है?

उत्तर— सूर्यसिद्धान्तीय रविमन्दोच्चगति में काफी अशुद्धि है। दृक्पक्षीय (वेधसिद्ध) रविमन्दोच्चगति प्रति वर्ष ११ विकला से कुछ अधिक है, इस कारण हमारे इसी कलियुग में रवि-मन्दोच्च लगभग ४भ्रमण करेगा, अतः इसी युग में प्रत्येक मास के क्षय होने की स्थिति अनेकों बार उत्पन्न होगी। इस लिए आश्विन, चैत्र आदि मासों के द्विसंक्रान्त होने की स्थिति में उत्पन्न होने वाली अव्यवस्थाओं की चर्चा, जो पृष्ठ ५५-५६ पर की गई है, असगत नहीं है।

सिद्धान्ततत्त्वविवेक की शेषवासना में कमलाकर ने भी केवल वर्त्तमानकालिक क्षयमासों के आधार पर ही निबन्धग्रन्थों की रचना करने वाले निबन्धकारों को प्रामाणिक नहीं माना—

यश्च भास्कराचार्यैः क्षयमाससम्भूतिवर्षनियम उक्तः, सोऽप्यत्र स्वकालानुरोधेन, नान्यत्रेति सुधियोह्यम्। अत्र सिद्धान्तवासनानभिज्ञाः शुष्कपण्डिताः साम्प्रतक्षय-लक्षणमेव सर्वकालजं मत्वा तद्विश्वासान्निर्णयग्रन्थान् रचयन्ति, न तन्मतं प्रमाणम् ॥

(सिद्धान्ततत्त्वविवेक, शेषवासना)

इसी प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि— वर्त्तमान-कालिक केवल तीन क्षयमासों (मार्गशीर्ष, पौष, माघ मासों) को ही ध्यान में रख कर मीमांसकों के द्वारा की जाने वाली संसर्प-विषक शुद्धयशुद्धि की व्यवस्था दोषपूर्ण है, क्योंकि उन्होंने भविष्य में रविमन्दोच्चचलनवश होने वाले अन्य क्षयमासों को दृष्टि में नहीं रखा, जिससे भविष्य में उनकी इस तथाकथित

व्यवस्था से अनेक ऐसी अव्यवस्थाएं उत्पन्न होंगी जिनका समाधान शक्य नहीं होगा।

प्रश्न (१७)— क्या 'वीरमित्रोदय' का 'इदं संसर्पस्य शुद्धत्वप्रतिपादनं विवाहादिव्यतिरिक्तक्षयाहादिश्राद्धादिविषयम्' —यह वचन संसर्प को केवल श्राद्ध के लिए ही शुद्ध नहीं बतलाता ?

उत्तर— ऐसी बात नहीं है। वीरमित्रोदय के इस वचन में "क्षयाहादिश्राद्धादिविषयम्" में प्रयुक्त "श्राद्धादि" शब्द बतलाता है कि संसर्प को केवल श्राद्ध के लिए ही नहीं, अपितु "श्राद्धादि" कर्मों के लिए शुद्ध माना गया है। यदि केवल श्राद्ध के लिए ही संसर्प का शुद्धत्वप्रतिपादन अभीष्ट होता तो यहां "वीरमित्रोदय"कार "क्षयाहादिश्राद्धादिविषयम्" न कह कर "क्षयाहादिश्राद्धविषयम्" कहते।

प्रश्न (१८)— संसर्प को शुद्ध मानने पर क्षयमास का अस्तित्व नहीं रहता। क्या संसर्पशुद्धिपक्ष में यह दोष नहीं है ?

उत्तर— संसर्प को अनधिकमास मानने पर क्षयमास मासयुगलात्मक नहीं रहता — इस से यह परिणाम निकालना कि द्विसंक्रान्तमास क्षयमास नहीं रहता—गलत है। 'द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्य'— क्षयमास की इस परिभाषा के अनुसार दो संक्रान्तियों वाला मास, भले ही मासद्वयात्मक न माना जाए क्षय-

मास तो कहलाएगा ही। यहां (प्रश्न में) प्रश्नकर्त्ता यदि यह अभिप्राय रखता है कि संसर्प को शुद्ध मान लेने पर मासलोप नहीं होता (अर्थात्—वह लुप्तमास को क्षयमास समझता है) तो यह भी असंगत है, क्योंकि लुप्तमास को क्षयमास कहना क्षयमास की परिभाषा के विरुद्ध है (देखें पृष्ठ ७६ एवं ११३)।

किञ्च "संसर्पाशुद्धिपक्ष" के अनुसार भी अव्यवहित संसर्प की स्थिति में क्षयमास मासद्वयात्मक नहीं रहता और किसी मास का लोप भी वहां नहीं होता। क्या उस स्थिति में भी प्रश्नकर्त्ता यह स्वीकार करेगा कि वहां भी क्षयमास समाप्त हो जाता है?

प्रश्न (१९)— श्रीकमलाकर ने 'सिद्धान्ततत्त्वविवेक' की शेषवासना में अव्यवहितपूर्व एवं व्यवहितपूर्व संसर्प की शुद्धि-अशुद्धि के प्रतिपादन में जो तर्क दिए हैं – उनके बारे में आपका क्या विचार है?

उत्तर—व्यवहित संसर्प की अशुद्धि एवं अव्यवहितपूर्व संसर्प की शुद्धि के समर्थन में कमलाकार द्वारा उपन्यस्त तर्क ही संसर्पाशुद्धिपक्षानुयायियों द्वारा अपनाए गए हैं—इन सभी तर्कों का प्रतिवाद हम पहिले विस्तार से कर चुके हैं।

प्रश्न (२०)—जबकि व्रत-पर्वों में पौर्वापर्य विहित नहीं है, तब क्षयमास को मासयुग्म मानने पर व्रत-पर्वों के पौर्वापर्यव्यत्यय पर आपको आपत्ति क्यों है? रम्भाव्रत, जो गङ्गादशहरा से सात दिन पहिले आया करता है, ज्येष्ठ

अधिमास होने पर गङ्गादशहरा के २३ दिन बाद आता है। क्या इससे स्पष्ट नहीं होता कि व्रत-पर्वों के पौर्वापर्य का कोई विहित नियम नहीं है ?

उत्तर—क्षयमास को मासयुगल मानना अधिमासोपपत्ति सिद्धान्त के प्रतिकूल तो है ही, इसके अलावा क्षयमास में दो मासों को समाविष्ट करने से एक सब से बड़ा अक्षम्यदोष यह उत्पन्न होता है कि—क्षयमास में समावेशित किए जाने वाले दो मासों का पौर्वापर्य विच्छिन्न हो जाता है। उदाहरणार्थ— सं. २०३९ में अहंस्पति (क्षय) मास में शुक्लादिपौष शुक्लादि-माघ—दोनों मासों को मासयुगलीकरण नियमानुसार एकत्र समाविष्ट करने से पौषशुक्ल और माघशुक्ल—दोनों पक्षों में कोई भेद नहीं रहा। इसी प्रकार शुक्लादि पौषकृष्ण एवम् शुक्लादि माघ-कृष्ण—दोनों पक्ष भी एक ही बन गए। इस तरह पौष-माघ मासों का पौर्वापर्य उच्छिन्न हो गया।

मासों का पौर्वापर्य शास्त्रविहित नहीं है—यह तो बहुत बड़ी साहसोक्ति ही मानी जाएगी। यहां सं. २०३९ में मासयुगलीकरणानुसार कृष्णादि माघ का कृष्णपक्ष कृष्णादि माघ के शुक्ल-पक्ष के बाद घटित हो रहा है— क्या यह पक्षों का क्रमव्यत्यय विहित है ? बस, मासयुगलीकरण द्वारा दो मासों और उनके पक्षों के पौर्वापर्य का व्युत्क्रमण ही व्रत-पर्वों में उत्पन्न होने वाले (पृष्ठ ४७ से ५६) पर बतलाए गए, व्युत्क्रम का अनन्य कारण है, जिससे असह्य अव्यवस्थाएं उत्पन्न होती हैं। मासों एवं पक्षों के शास्त्रविहित पौर्वापर्य का उल्लंघन किए बिना मास-युगलीकरण नियम प्रवृत्त नहीं हो सकता।

सारांश यह है— हमारी प्रमुख आपत्ति मासों एवं पक्षों के परम्परागत एवं व्यवहार में प्रयुक्त होने वाले पौर्वापर्य के उल्लंघन पर ही है। हम समझते हैं— इस उल्लंघन को जनसाधारण तो और भी अन्यथा समझेगा।

क्योंकि— मासों-पक्षों का पौर्वापर्य शास्त्रविहित है, अतः तद्गत व्रत-पर्वों का पौर्वापर्य भी शास्त्र विहित ही है—यह अनुवृत्त्या सिद्ध है। 'मासों एवं पक्षों का पौर्वापर्य विहित नहीं है'—यदि ऐसी बात 'गीर्वाणवाग्वर्धिनी सभा, वाराणसी' के विद्वान् कहते हैं तो हम उनकी इस साहसोक्ति के आगे आत्मसमर्पण करने के अलावा विकल्पान्तर देखते ही नहीं हैं।

ध्यान रहे— ज्येष्ठाधिमास की स्थिति में रम्भा-व्रत और गङ्गादशहरा के पौर्वापर्य में जो व्यत्यय उत्पन्न होता है वह मासों या पक्षों के विहित पौर्वापर्य के उल्लंघन से उत्पन्न नहीं है। इन पर्वों के पौर्वापर्य का विच्छेद शास्त्र द्वारा स्पष्टतया विहित है।

''ज्येष्ठाधिमास की स्थिति में गङ्गादशहरा को आगे शुद्ध-(निज)मास में मत ले जाइए ('दशहरासु नोत्कर्षः') —यह शास्त्र-वाक्य इस बात का स्पष्टरूप में विधान करता है कि—ज्येष्ठाधि-मास आने पर केवल रम्भाव्रत आदि को उत्कृष्ट कीजिए [अग्रिम(शुद्ध)मास में ले जाइए], तद्गत गङ्गादशहरा पर्व को नहीं। क्या यहां स्पष्ट नहीं कि गङ्गादशहरा और

रम्भाव्रत के परम्परागत पौर्वापर्य के उल्लंघन को यह शास्त्रवाक्य आज्ञापित करता है ?

मासयुगलीकरण वाक्य भी व्रत-पर्वों के परम्परीण पौर्वापर्य को विच्छिन्न करने का प्रकारान्तरेण विधान करते है—यह भी तर्क मान्य नहीं है, क्योंकि मासयुगलीकरण वाक्य संसर्प को अधिमास बनाते हैं, ज्योतिषसिद्धान्तदृष्टया कालाधिक्याभावेन संसर्प किसी भी स्थिति में अधिमास नहीं हो सकता—यह हम पहिले प्रतिपादित कर चुके हैं। मासयुगलीकरण के उपपत्तिहीन, अव्यवस्थाजनक वाक्यों की सावकाशता के आपादन द्वारा अधिमासोपपत्ति सिद्धान्त की हत्या सचमुच 'वरविघाताय कन्योद्वाहः' ही समझी जाएगी।

अपि च—व्रत-पर्वों के पौर्वापर्य का विच्छेद दोषावह नहीं है—यह कहना भी अयुक्त है। क्योंकि सं. २०३९ में मासयुगलीकरणानुसार कृष्णादिपद्धत्यनुसारी माघकृष्णपक्ष माघशुक्ल के बाद घटित हो रहा है। यहां माघकृष्ण की किसी तिथि को प्रारम्भ हो कर माघशुक्ल की किसी तिथि को समाप्त होने वाले पर्वों का अनुष्ठान असम्भव हो गया है, क्योंकि उनकी समाप्तितिथि पहिले और प्रारम्भतिथि बाद में आ रही है। इसी प्रकार भविष्य में श्राद्धों में दीवाली आदि पर्वों की उपस्थिति और आगामी तथा विगत—दोनों सवत्सरों का एक मास तक साथ-साथ चलना आदि अन्य अनेक दोषों को, जो इस पौर्वापर्यव्यत्यय एवं मासमिश्रण से उत्पन्न होते हैं, गणनिमीलिकया उपेक्षित नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार स्पष्ट है—मास-पक्षों के विहित पौर्वापर्य के

व्यत्यय का परिहार करना ही संगत है, इससे व्रत-पर्वों का पौर्वापर्य-भंग भी परिहृत हो जाएगा। इसका एक-मात्र उपाय है मासयुगलीकरणसिद्धान्त का परित्याग।

प्रश्न (२१)— सं. २०३६ में आश्विन को शुद्ध मानने पर दीपावलि को कन्यार्क में मानना होगा—कन्यार्क में दीपावलि पहिले कभी नहीं सुनी।

उत्तर—दीपावलि तुलार्क में ही मनाई जाए— ऐसा कोई शास्त्र वाक्य नहीं है। विगत वि.सं. २००१ और वि.सं. २०२० में कन्यार्क में ही दीपावलि मना चुके हैं। भविष्य में भी वि.सं. २०६६ और वि.सं. २०८५ में भी सूर्यसिद्धान्तानुसार कन्यार्क में ही दीपावलि पड़ेगी।

प्रश्न (२२)—क्या संसर्प में अपूपदान करना चाहिए ?

उत्तर— अपूपदान आधिमासिक कृत्य है। संसर्प अधिमास ही नहीं है, अतः इसमें अपूपदान विहित नहीं है। कृष्णम्भट्ट का वचन है—

'संसर्पे नाधिमासिकं कालस्यानाधिक्यात्'।

जितने भी अधिमास से सम्बन्ध रखने वाले अन्य कृत्य हैं उन्हें भी संसर्प में न करके क्षयपरवर्त्ती असंक्रान्त मास, जो वस्तुतः अधिमास है, में ही करना चाहिए - यही शास्त्रीय विधान है।

प्रश्न (२३)— जबकि संसर्प एवं क्षयमास के व्रत-पर्वादि की तिथियों का निर्णय धर्मशास्त्र का ही विषय है तब आप अधिमासोपपत्ति को इसका निर्णायक क्यों मानते हैं ?

उत्तर—व्रत-पर्वादि की तिथियों का निर्णय धर्मशास्त्र का ही विषय है—इसमें हमारा वैमत्य नहीं है। लेकिन अधिमास क्या होता है, किस मास को अधिमास माना जाए किसे नहीं—यह तो ज्योतिषशास्त्र (अधिमासोपपत्ति) का ही विषय है। "असंक्रान्तमास अधिकमास होता है"— इस परिभाषा से क्षयमास के पूर्वापरवर्त्ती दोनों असंक्रान्तमासों को अधिकमास नहीं माना जा सकता क्योंकि अधिमास की उपपत्ति के अनुसार दो अधिकमास एक ही वर्ष में (तीन-चार मासों के अन्तर पर ही) घटित नहीं हो सकते। यही कारण है— इसके निर्णय के लिए हमें ज्योतिषशास्त्र की ही शरण में जाना पड़ता है। अधिमासीय परिभाषा एवं उपपत्ति के आधार पर ही हमें यह निर्णय करना होगा कि तीन-चार मासों के अन्तर पर ही घटित हो रहे इन असंक्रान्तमासों में से किसी एक को ही अधिमासत्व प्राप्त है अथवा दोनों को। अधिमासोपपत्ति द्वारा इन दोनों असंक्रान्त मासों में से किसी एक या दोनों के अधिमासत्व-अनधिमासत्व का निर्णय हो जाने के बाद ही यह विवाद धर्मशास्त्र के क्षेत्र में व्रत-पर्वादि के निणयार्थ जाता है, इससे पूर्व कदापि नहीं। "प्राक्तत: तत्र पूर्व: स्यात्......" "एकस्मिन्नपि यत्रेदं......" आदि धर्मशास्त्रवाक्यों द्वारा ही इन दोनों असंक्रान्तमासों में से अन्यतर (पूर्ववर्त्ती) असंक्रान्तमास का अधिमासत्व निर्णीत कर दिया गया है, अत: अधिमासोपपत्ति की शरण में जाने की

आवश्यकता ही क्या है– यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि धर्मशास्त्र के ये वाक्य भी अधिमासोपपत्ति सिद्धान्त द्वारा किए गए निर्णय को ही उद्धृत करते हैं। मासयुगलीकरण आदि के समर्थक कुछ ऐसे वाक्य भी उपलब्ध हैं, जो इन दोनों असंक्रान्त-मासों को अधिमास बना डालते हैं और उनका "प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यात्......" आदि वाक्यों से विरोध उपस्थित हो जाता है। इस स्थिति में इन परस्पर विरोधी शास्त्रवाक्यों को स्वतः प्रमाण न मान कर परतःप्रामाण्य द्वारा निर्णयार्थ अधिमासोपपत्ति सिद्धान्त की शरण में जाना ही न्याय्य है। "इन परस्पर विरोधी वाक्यों का समन्वय मीमांसया विषयभेदेन किया जा सकता है" —यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि इससे अधिमासत्व के निर्णायक ज्योतिः सिद्धान्त का तिरस्कार होता है। विषयभेदेन इन वाक्यों की व्यवस्था अधिमासोपपत्ति-विरुद्ध होने के साथ-साथ अनेक अक्षम्य अव्यवस्थाओं की जननी भी है, जबकि अधिमासोपपत्ति सिद्धान्त द्वारा की गई व्यवस्था किसी भी प्रकार की अव्यवस्थाओं से सर्वथा मुक्त एवम् ज्योतिः-शास्त्र द्वारा सर्वथा समर्थित है।

प्रश्न (२४)— शकाब्द १७४४ में क्षयमास आने पर तात्कालिक पेशवा के सभापतित्व में हुई एक विद्वत्सभा में व्यवहितपूर्व संसर्प को अशुद्ध माना गया था। इस सभा के निर्णयपत्र को, जो मूलरूप में अब भी उपलब्ध है, संसर्प शुद्धिपक्ष वाले प्रमाण क्यों नहीं मानते ?

उत्तर— यह निर्णयपत्र संसर्पाशुद्धिपक्ष का समर्थन करता है। संसर्पाशुद्धिपक्ष वालों द्वारा संसर्पशुद्धिपक्ष के विरोध एवम्

अपने पक्ष का समर्थन में जो आक्षेप तथा तर्क दिए जाते हैं, वे सब इस निर्णय पत्र में मिलते हैं। इन आक्षेपों एवं तर्कों का एकैकशः खण्डन हम पहिले कर चुके हैं।

पेशवाकालीन यह निर्णय अधिमासोपपत्ति सिद्धान्त की अवहेलना करता हैं, मासयुगलीकरण का समर्थक होने से पूर्वोक्त असंख्य अव्यस्थाओं को जन्म देता है। म.म. वाचस्पति-मिश्र, अनन्त देव, श्रीकृष्णम्भट्ट आदि मूर्धन्य मीमांसक भी इस की व्यवस्था को शास्त्रीय नहीं मानते।

प्रश्न (२५)— शकाब्द १७४४ का एक प्राचीन हस्तलिखित पंचाङ्ग काशिराज के पुस्तकालय में उपलब्ध हुआ है, जिसमें क्षयपूर्ववर्त्ती व्यवहित संसर्प को षष्टितिथ्यात्मक माना गया है। व्यवहितपूर्व संसर्प को त्रिंशत्तिथ्यात्मक बतलाने वाला कोई ऐसा प्राचीन पंचाङ्ग क्या उपलब्ध है?

उत्तर— जी हां, उपलब्ध है। आंध्रप्रदेश के एक विद्वान् पंचाङ्गकार श्री चिन्तालपाटी शास्त्री जी के प्राचीन ग्रन्थाकार में से आन्ध्र (तेलुगु) लिपि में ताडपत्र पर लिखित शकाब्द १७४४ का ही एक प्राचीन पंचाङ्ग उपलब्ध हुआ है। यह पंचाङ्ग २५ जुलाई १९८२ ई. को पेद्दापुरम् (E. Godabari) में आयोजित एक क्षयमासविचार सभा के विद्वानों के सम्मुख उपस्थापित किया गया था। इस पंचाङ्ग के अपेक्षित मास-पक्षों वाले पृष्ठों की फोटोकापी इस पुस्तक के अन्त में दी गई है, वहां देखिए। एक बात यहां ध्यान देने योग्य है कि इस प्राचीन पंचाङ्ग में व्यवहितपूर्व संसर्प (असंक्रान्त) आश्विन

में ही आश्विन के सभी दशहरा आदि पर्वोत्सव लिखे मिलते हैं, जब कि काशिराज के पुस्तकालय से उपलब्ध पंचाङ्ग में मासिक व्रत-पर्व कहीं भी नहीं लिखे गए हैं।

अपि च— दरभंगा नरेश के पुस्तकालय में भी ऐसे प्राचीन पंचाङ्ग सुरक्षित हैं— जिनमें व्यवहित संसर्प को त्रिशत्तिथ्यात्मक माना हुआ है[1]।

किञ्च श्रीगणेश दैवज्ञ ने "बृहत्तिथिचिन्तामणि" में शकाब्द १४६२ में आए जिस क्षयमास का उदाहरण दिया है, उसमें व्यवहितपूर्व संसर्प (असंक्रान्त) आश्विन के परवर्त्ती मास को उन्होंने स्पष्टरूप में कार्त्तिक लिखा है।

प्रश्न (२६)— छल्लारि ने 'मासत्रयं त्याज्यमिदम्...' में उत्सव का अर्थ नवरात्रादि किया है—इससे आप सहमत क्यों नहीं हैं?

उत्तर— इसका उत्तर पृष्ठ ७८ पर दिया चुका है।

प्रश्न (२७)— 'शास्त्रीयपंचाङ्गमीमांसा'[2] में 'संसर्प की शुद्धता का वैज्ञानिक विवेचन' शीर्षक में दिए गए वर्ग-

---

१. हम इन पंचाङ्गों को उपलब्ध नहीं कर सके। दरभंगाविश्वविद्यालय के ज्योतिषविभाग के प्राध्यापक श्रीव्रजकिशोर झा ज्योतिषाचार्य ने हमें बतलाया कि इस प्राचीन पुस्तकालय के स्थानान्तरण के कारण हुई अस्त-व्यस्तता से ये पंचाङ्ग ढूंढे नहीं जा सके।

२. इस पुस्तक का विज्ञापन इस पुस्तक के अन्त में दिया गया है।

पत्र (Graph) में अधिशेष को अधिमासघटना तक लगातार बढ़ता ही दिखाया गया है, जब कि वह तुलार्क तक ही बढ़ता है। क्या यह गलत नहीं है ?

उत्तर— "शास्त्रीय पंचाङ्ग मीमांसा" में दिया गया वर्गपत्र (आलेख=Graph) मध्यम सौर-चान्द्रमासों के अन्तर से उत्पन्न अधिशेष को ही निर्दिष्ट करता है। स्पष्टमान से अधिशेष का वर्गपत्र में अंकन असम्भव है, क्योंकि स्पष्ट अधिशेष का मान चन्द्रमन्दोच्च की स्थिति पर निर्भर करता है जो सूर्यमन्दोच्च की गति से कहीं अधिक गति रखता है, जिससे स्पष्ट अधिशेष का मान प्रतिवर्ष प्रत्येक मास में बदलता रहता है। अनेक बार तो स्पष्टमानेन अधिशेष की मासिक गति कुछ घड़ियां और कभी-कभी तो कुछ पल ही होती है। इस लिए सतत परिवर्तनशील स्पष्ट अधिशेष को याथातथ्येन वर्गपत्र में अंकित नहीं किया जा सकता। अतः यहां मध्यममान का आश्रय लेना ही एकमात्र विकल्प है। "विष्णुधर्मोत्तर" पुराण का "दिवसस्य हरत्यर्कः षष्टिभागमृतौ ततः......" यह वाक्य भी मध्यममान से ही प्रति दो मासों में दिनद्वयात्मक अधिशेष की सततवृद्धि की बात करता है।

ध्यान रहे—'स्पष्ट अधिशेष तुलार्क तक ही बढ़ता है' —यह कहना भी गलत है, क्योंकि कुम्भ एवं मीन के सूर्य में भी स्पष्ट अधिशेष अनिवार्यतः बढ़ता ही है[1]। वृश्चि-

---

१. क्योंकि सूर्य का कुम्भराशिभोगकाल (२९ दिन ५२ घटी) और मीनराशिभोगकाल (३० दिन २२ घटी) महत्तम चान्द्रमासमान (२९ दिन ४६ घटी) से अधिक है।

कादि तीन राशियों में सूर्य की स्थिति के समय भी अनेकदा (जब कभी चान्द्रमाससमान इस अवधि में सौर-मास से कम रहता है) स्पष्ट अधिशेष बढ़ता है।

इसी प्रकार इसी प्रश्नकर्त्ता द्वारा हमारे इसी वर्गपत्र के बारे में ये निम्नांकित चार और आक्षेप किए गए हैं—

(१) जो आपका 'द' बिन्दु है, जितनी इसको दूरी पहिले संक्रम से है, उतनी दूरी पर ही 'ल' बिन्दु होना चाहिए, क्योंकि 'ल' बिन्दु पर ही कालाधिक्य पूरा कट जाता है। पहिले वह कट नहीं सकता।

(२) क्षयमास में जो अधिशेष आपने दिखाया है वह समय की रेखा से नीचे ऋणरूप से दिखाना चाहिए था।

(३) क्षय और अधिमास सामान्य मास संसर्प से आगे दिखाना चाहिए था। अर्थात् 'ल' बिन्दु 'द' रेखा पर होना चाहिए और 'र' बिन्दु 'ल' पर होगा और आगे ऋण धन होकर एक क्षय एक अधिक होगा।

(४) आलेख का समीकरण भी नहीं बन सका। यह आलेख न हो कर आलेखाभास ही है।

इन चारों आक्षेपों के उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

(१)—सभी अधिमास अपने पूर्ववर्त्ती अधिमास से समान अन्तर पर नहीं होते। इनका परस्पर अन्तर २८ से ३५ तक रहता है। अतः इस वर्गपत्र में 'ल' बिन्दु को गलत नहीं कहा जा सकता।

(२)— यहां क्षयमासान्तर्गत दो संक्रान्तियों के मध्यगत काल को आक्षेपकर्त्ता महोदय ऋण अधिशेष कह रहे हैं, जो कि गलत है। यदि "वादिपरितोषाय" क्षयमासान्तर्गत दो संक्रान्तियों के काल को (जो लगभग एकमास तुल्य है) ऋण अधिशेष मान भी लें तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि—क्षयमास-प्रवृत्ति के लगभग तुरन्त बाद वह एकमासात्मक ऋण अधिशेष एकमासात्मक धन अधिशेष कैसे बन जाता है? एक-दो मास के भीतर ६० तिथ्यात्मक अधिशेष की वृद्धि तो अधिशेषोपपत्ति-सिद्धान्त के सर्वथा प्रतिकूल है।

(३)— आक्षेपकर्त्ता इस आक्षेप द्वारा क्या कहना चाहता है—सर्वथा अस्पष्ट है।

(४)— आक्षेपकर्त्ता ने यहां यह नहीं बतलाया कि आलेख का समीकरण क्यों नहीं बन पाया। अतः यह तथाकथित आक्षेप प्रतिवाद की अपेक्षा नहीं रखता।

प्रश्न (२८)— 'संक्रान्तिचालन' किसे कहते हैं? क्या इस से 'संसर्पशुद्धिपक्ष' का समर्थन होता है?

उत्तर— "यां तिथिं समनुप्राप्य तुलां गच्छति भास्करः। तयैव सर्वसंक्रान्तिर्यावन्मेषं न गच्छति" —वाक्य संक्रान्तिचालन का समर्थक है। श्रीकृष्णम्भट्ट आदि ने इस वाक्य के अनुसार मीमांसा द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि क्षयमास की पूर्ववर्त्ती तुलासंक्रान्ति का तत्पूर्ववर्त्ती अमावस्या से ही नित्य सम्बन्ध है। अतः तुलासंक्रान्ति से क्षयमासान्तर्गत प्रथम संक्रान्ति तक की सभी संक्रान्तियों को इस वाक्यानुसार स्व-स्व पूर्ववर्त्ती अमावस्याओं में घटित मान लेना चाहिए। इस प्रकार क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्त

(संसर्प)मास शुद्ध(अनधिक)मास बन जाएगा एवम् व्यवहित-पूर्व संसर्प की स्थिति में तदुत्तरवर्त्ती क्षयमास पर्यन्त सभी मासों के नाम भी एकैकशः आगे खिसक जाएंगे। इससे संक्रान्ति-द्वयवश अंहस्पति में लुप्त होने वाला एक मास पृथक् अस्तित्व रखने लगता है और क्षयमास मासद्वयात्मक न रह कर एकमासात्मक ही रहता है।

संसर्प को अनधिकमास मानने वाले शास्त्रवाक्यों का वैयर्थ्य समाप्त करने के लिए "व्यर्थं सत् किञ्चिज् ज्ञापयति" न्यायानुसार संसर्प से क्षयमास पर्यन्त मासों के परम्परागत नामों का परिवर्त्तन भी प्रकारान्तर से संक्रान्तिचालन ही है।

केचनान्ये विविधा आक्षेपाः, पूर्वपक्षीयाः सिद्धान्ताः तेषां प्रतिवादश्च

[अत्राधस्तात् केचन त आक्षेपाःसंस्कृतमाश्रित्य प्रत्युद्यन्ते ये वाराणस्याः श्रीगीर्वाणवाग्वर्धिनी-सभाया विद्वद्भिः मीमांसकैः 'सं. २०३६ के क्षयाधिमास का निर्णय एवम् सं. २०२० के क्षयाधिमासनिर्णय पर समागत आक्षेपों का निराकरण' इति हिन्दीशीर्षकान्तःस्थे संस्कृतमवलम्ब्य प्रस्तुते निबन्धे पूर्वप्रवर्त्तिताऽस्मत्कृत-प्रकाशनेषु निक्षिप्ताः, इतरे चापि केचन प्रतिवादिनां सिद्धान्ताः । अत्र प्रतिपाद्यमानां विषयाणां प्रौढतया संस्कृतमूलतया च संस्कृत एव मीमांसनमेतेषां लाघवाय सुव्यक्तये च भवति इत्येव संस्कृताश्रयोऽत्रैषः, नान्यथैष विद्वद्भिः मन्तव्यः ।]

पूर्वपक्षः (१)—मंसर्पोऽसंक्रान्तो मासः नाधिशेषप्रयुक्तः, क्षयोत्तरवर्त्ती च सः अधिशेषजन्मा ।

उत्तरपक्षः— क्षयपूर्वापरवृत्ती उभावेव असंक्रान्तौ मासौ

'दर्शाग्रतः संक्रमकालतः प्राक् सदैव तिष्ठत्यधिमासशेषम्' इति परिभाषिताधिशेष-प्रयुक्तावेव । परम् एव अधिशेषप्रयुक्तं वदतां श्रीगीर्वाणवाग्वर्धिनीपरिषदो विदुषां मतं किमाश्रयमिति तु न पारयामो वेत्तुम् । अधिशेषादृते असंक्रान्तमासप्रवृत्तेः चर्चा तु उपपत्तिविरोधिनी ज्योतिर्विदः कस्यचन सैद्धान्तिकस्य मतेः न भवति परिणामः — इति तु वयं सप्रतिज्ञं पारयामो वक्तुम् । "अधिशेषघटितोऽधिमासः प्रतिवर्षत्रयान्तरवृत्तिः, क्षयमासवर्षे प्रवृत्तयोः अधिमासयोः पर एव वर्षत्रयान्तरस्थः इति स एवाधिशेषघटितः" — इत्यपि परिषद्विदुषाम् अविचारित उपन्यासः, यतः पूर्वोऽपि वर्षत्रयान्तरित एव नित्यम् अष्टाविंशतेः मासेभ्यः अर्वाङ् न कदापि प्रवर्त्तते, तत्कुतः अधिशेषघटितत्वं परस्य, न पूर्वस्य ?

"पूर्वोऽसंक्रान्तः (संसर्पः) अधिशेषस्य मासतुल्यतास्वीकारात् पूर्वमेवापतति"— इत्यपि श्रीगीवार्णवाग्वर्धिनीपरिषदो विदुषाम् वच उपलब्धेः उपपत्तेश्च भृशं विरुद्धम् । अधिशेषे चान्द्रमासात् किञ्चिदपि न्यूने चान्द्रमासस्य विसंक्रान्तितां तु कश्चन ज्योतिषानभिज्ञ एव ब्रूयात् । सं. २०३९तमे वैक्रमाब्दे क्षयपूर्ववर्त्तिनि असंक्रान्त आश्विने अधिशेषम् ३० दिनानि २८ घट्यः ५८ पलानि— इति प्रत्यक्षम् । एतत् चान्द्रमासमानात् न्यूनमिति प्रत्यक्षविरुद्धं घोषयन्तः परिषदो विद्वांसः संसर्पमेतमाश्विनम् अनधिशेषघटितमाहुराश्चर्यं परमम् ।

उभावपि क्षयात् पूर्वं परतश्च स्थितौ असंक्रान्तमासौ अधिशेषेणैव प्रवर्त्तितौ भवतः— इति तु साक्षात् सर्वोऽपि पश्यति । परम् पूर्वाऽसंक्रान्तेन शून्यतुल्यतां गमितमधिशेषं क्षयप्रवृत्तौ भूयः द्वित्रि-मासानन्तरम् तत्पूर्वमेव वा चान्द्रमासकल्पं सम्पद्यते,

येन पूर्वः सः असंक्रान्तः प्रवृत्तचरोऽपि अप्रवृत्त इव सम्पद्यते—इत्येव पूर्वस्य अमलत्वम् । मलश्च सूर्याचन्द्रमसोः मासयोः अन्तरेण (अधिशेषेण) संकलितेन सम्पन्नः अतिरिक्तो मासः सौर-चान्द्रमासपरम्परायाः मलरूपेण बहिष्कृतः । अत्र च सः संसर्पेण अल्पावधय एव अस्थायित्वेन बहिष्कारमञ्चति पुनश्च सः क्षयप्रवृत्तौ तथैव मासतुल्यमानमादाय प्रवर्त्तते, येन संसर्पं तं मलत्वेन न पश्यन्ति अधिमासोपपत्तिविदः । क्षयात्परस्त्व-संक्रान्तः प्रवृत्तः स्थायित्वेन बहिष्कारं प्राप्तः इति तस्यैव वास्त-विकं मलत्वम्, इत्येव "प्रशस्तस्तत्र पूर्वः स्यात्......" इत्यादि वचसां मूलम् ।

अपि च पूर्वस्थमसंक्रान्तम् अधिशेषेण (सूर्य-चन्द्रवर्षमाना-न्तरेण वर्षे वर्षे एकादशभिः दिनैः क्रमशः सञ्चितैः) अप्रयुक्तम्, उत्तरं च तेन प्रयुक्तं मन्वानाः श्रीगीर्वाणवाग्वर्धिनी-सभाया विद्वांसः विध्यन्तरेण उत्तरमेव यथार्थमधिमासमुररीकुर्वते । इत्थम् अस्मत्प्रतिपादितमेव संसर्पस्य अनधिमासत्वं तैः "वधूश्वश्रू"-न्यायेन अभ्युपपन्नम् ।

पूर्वपक्षः (२)— संसर्पमासस्य शुद्धत्वबोधकैः 'मासद्वये-ऽब्दमध्ये तु......' 'एकस्मिन्नपि वर्षे चेत्......' एतैर्वचनैः यदि संसर्पस्य शुद्धत्वमेवोच्यते तदा 'शास्त्रीयपंचाङ्गमीमांसा'यां[१] १९२तमे पृष्ठे प्रतिपादितं तस्य शुद्धतुल्यत्वं नोपपद्यते ।

उत्तरपक्षः—एतानि वचांसि साधारण्येन संसर्पं शुद्धं प्रशस्तं

---

१. "शास्त्रीय पंचाङ्ग मीमांसा" दृक्पक्षसमर्थननिबन्धना अस्मत्कृतिः । विज्ञापन-मस्याः पुस्तकस्यास्यान्ते दृश्यताम् ।

वदन्ति-स्फुटमेतत् । परम् संसर्पं सर्वकर्मबहिष्कृतं शुभकर्मसु वर्जितं वदन्ति वचांस्यपि पश्यामः, येन आपाततः मिथः प्रतिकूलयोः वचसां कुलयोरेतयोः प्रातिकूल्य- परिहाराय मीमांसन पुरस्सरं व्यवस्थापनया संसर्पस्य कालान्तरसाध्यकर्मसु विवाहादिषु वर्ज्यता इतरेषु च मासप्रयुक्तकर्मसु ग्राह्यता प्रतिष्ठापितैव पूर्वम्-इत्येव सर्वथा शुद्धत्वं संसर्पस्याप्राप्तं जानानैः संसर्पपक्षधरैरस्माभिः संसर्पः शुद्धतुल्यतया विशेषितः—इति व्यक्तम् । क्वचनाऽयं शुद्ध इत्येवमपि चर्चितः यतोहि उपमेयस्य सादृश्यातिशयाद् अनेकदा उपमानरूपतया भासः प्राकृतिकः । तदेव नायिका मुखं काव्ये क्वचन चन्द्रं क्वचन च चन्द्रतुल्यमाह कविः । इयं हि वाग्व्यवहार-प्राप्ता भाषासरणिः । प्रकृते अप्रकृतारोपोऽपि तुल्यतामूल एवेति संसर्पे शुद्धत्वदृष्टिः शुद्धतुल्यत्वदृष्टिश्च उभे समं शुद्ध-सादृश्यं संसर्पस्य दिशतः, येन नैते मिथो विरोधाय वर्त्तेते । "जयसिंहकल्पद्रुम"कारोऽपि संसर्पं शुद्धं शुद्धतुल्यमुभयं प्राह । तद् यथा—

द्विसंक्रान्तिमासो यदा भवति, तदा वर्षमध्ये मास-द्वयमधिकं भवति । तत्र परो दुष्टः आद्यः शुद्धः ।........

....

संसर्पोऽसंक्रान्तोऽपि न मलमासः किन्तु शुद्धतुल्यः । उत्तर एवासंक्रान्तो मलमासः ।

पूर्वपक्षः (३)— शास्त्रीयपंचाङ्गमीमांसायां संसर्पस्य शुद्धमासतुल्यत्वं मलाभासत्वं चोच्यते, तद्विरुद्धं भाति । यतो मलाभासत्वं मलाभाववत्त्व एव सम्भवति ।

उत्तरपक्षः—"संसर्पे मलाभासत्वं तस्य मलाभाववत्तायाम् (शुद्धतायाम्) एव सम्भवति । शुद्धतुल्यता चाऽस्माभिः तस्य मीमांसायां प्रोक्ता"—इत्येषा परिषदो विदुषामापत्तिः । सत्यम्—मलाभासः मलत्वाभाव एव युज्यते, परम् अतस्मिन् सादृश्यवशात् आपाततः तत्त्वप्रतीतिः आभासः इति संसर्पे अमलेऽपि मलाभासत्वं मलमाससाधारण्यात् । मलमाससाधारण्यञ्च संसर्पस्य विवाहादि-अन्यगतिककर्मबहिष्कृतत्वम् । तस्य शुद्धमासतुल्यता च विवाहाद्यतिरिक्तानन्यगतिकश्रौत-स्मार्त्त-कर्मार्हता । इत्येवं मलाभासता शुद्धतुल्यता चेति द्वय्येव संसर्पावस्थाना । मुधैवात्र विरोधचर्चा । आभासः सादृश्यमूलम् अतस्मिन् तज्ज्ञानम् इति तुल्यताया नास्य व्यवच्छेदः शक्यः कर्त्तुम् ।

शुद्धतुल्यतया संसर्पस्य सर्वथा शुद्धतायाः प्रतिवादेऽपि भानुलंघितत्वप्रयुक्तं तस्य मलत्वं स्वीकर्त्तुं न वयं प्रभवामः, कालाधिक्यरूपोपाधेरत्र सत्त्वात् । "संसर्पो मलमासः भानुलंघितत्वात्"—अत्र भानुलंघितत्वं न सद्धेतुः, अपितु हेत्वाभासः, मलत्वे कालाधिक्यमत्र उपाधिः—इति पूर्वं (१७–२६ पृष्ठेषु) स्थापितमेव ।

पूर्वपक्षः (४)—'तत्प्राक्संग्यधिमासको यदि भवेत्तत्रत्य-सांवत्सरम् । तस्मिन् शुद्धतया क्षये च वचनात् कुर्याद् द्वयोः कोविदः ॥' — दीपिकावचनमेतद् अव्यवहितपूर्वमेव संसर्पं शुद्धं वदति ।

उत्तरपक्षः—नैवम् । 'यदि'पदमत्र क्षये संसर्पे च-उभयत्र आवृत्त्या सांवत्सरविधानस्य प्रतिबन्धकतया 'क्षयप्राक्संग्यधिमासक' समुपस्थापयति । क्षयप्राक्संगित्वम् अधिमासस्य शुद्ध-

ताया नियामकतयाऽत्र 'यदि'ना समुपस्थाप्यते — अयं तु भ्रम एव "स्तेनश्चेद् विप्रः अदण्डयतया निर्वास्यः"—इत्यत्र अदण्डयतायाः नियामकतया स्तेनत्वस्य प्रतीतिवत्। सर्वेऽपि विप्राः धर्मशास्त्रैः अदण्डयतया निर्दिष्टाः, अतः स्तेनस्यापि तस्य अदण्डयतैव। नहि "स्तेन एव विप्रः अदण्डयः"— इति पूर्वोद्धृतस्याऽस्य वाक्यस्य प्रतिपादना। तथैव जाबाल्यादिभिः सर्वेऽपि क्षयप्राग्वृत्तयोऽधिमासाः शुद्धतया निर्दिष्टाः, अतः क्षयसमनन्तरपूर्ववृत्तेरपि तस्य शुद्धतैव। नहि दीपिकावचनमेतत् क्षयसमनन्तरपूर्ववृत्तिमेव संसर्पं शुद्धमाह।

नात्र 'यदि'पदमेतत् एतेन दीपिकावचोव्याख्यानेन वैय्यर्थ्यमृच्छति—इति व्यक्तम्।

किञ्च अव्यवहितपूर्वस्यैव संसर्पस्य शुद्धेः समर्थकमपि चेदस्य व्याख्यानम् उररीक्रियेत तदापि जाबाल्यादि-आर्षवाक्यानां विरोधि अधिमासोपत्तेः प्रतिकूलमिति नास्य प्रामाण्यम्। अपि चैतेन क्षयसमनन्तरपूर्ववर्त्तिनः एव संसर्पस्य कर्माहतायाः पोषकेण व्याख्यानेन अव्यवहितपूर्ववृत्तौ संसर्पे सत्यपि अंहस्पतिः मासद्वयात्मकतां न मुञ्चति। परिषदो व्यवस्थया तु तस्मिन् मासयुग्मता व्यवहिते संसर्प एव निधीयते — इत्यस्ति स्फुटो विरोधः। सांवत्सरविषयकमेव अव्यवहितसंसर्पस्थितौ अपि क्षयस्य मासयुग्मत्वम् —इत्यपि आर्षप्रमाणविरहात् न स्वीकुर्मः।

पूर्वपक्षः (५) — मासिक-सांवत्सरयोः सौरमासतिथ्यनुसारम् अनुष्ठाने अपेक्षितक्षयाहतिथेः अपेक्षिते सौरमासे अनुपलम्भे चान्द्रमासीयतिथिग्रहणं 'स्मृत्यन्तर'कारः आदिशत्। तस्मिन् मृत्युमासे चान्द्रे क्षयं गते च तदुत्तरे चान्द्रमासे

तदनुष्ठानं स उपदिदेश। तथा च तद्वाक्यम्—

सौरमासे तिथ्यभावे मासिकाब्दिकयोरपि।
चान्द्रो मासो भवेद् ग्राह्यस्तस्मिंश्चान्द्रे क्षयं गते॥
तदुत्तरे मासि तिथि र्ग्राह्या पूर्वत्र नेष्यते॥

'स्मृत्यन्तर'वचनेनैतेन अंहस्पतिः मासयुगलात्मकः सिद्ध्यति।

उत्तरपक्षः— नेदमित्थम्। सौरपक्षानुसारिश्राद्धार्थमेवैतत् स्मृत्यन्तरवचः प्रवृत्तम्। अपेक्षितः चान्द्रमासः क्षयं गतश्चेत् अंहस्पतौ तदीयं मासिकं सांवत्सरञ्चाचर्यम्—नैतेन अंहस्पतेः मासयुग्मता "स्मृत्यन्तर"कर्त्तुरभिप्रेता इति शक्यं वक्तुम्। तथा चेत्, बहुत्र एतदनुसारम् अंहस्पतिपरवर्त्तिनोऽपि मासस्य मासयुगलत्वमापतेत्। अत्रैतदुदाहरणम्—

कल्प्यते— अमायाः समाप्तिः २२।० घटीपलात्मके इष्टे, तत्रैव दिने च धनुःसंक्रान्तिः २८।० तुल्ये इष्टे। ततः परस्मिन् दिने शुक्लप्रतिपदः १६।१० तुल्ये इष्टे समाप्तिः। अत्र २९ दिनानि ३४ घट्यः— एतत्तुल्ये चान्द्रमाससमाने द्वितीयस्या अमायाः समाप्तिः ५६।० तुल्ये इष्टे, तत्रैव च दिने मकरसंक्रान्तिः ५५।१ तुल्ये इष्टे। चान्द्रमासोऽयं द्विसंक्रान्ततया क्षयाख्यः मकरस्थे रवौ समाप्तिमेति इति पौषसंज्ञकः (मासयुगलीकरण-पक्षेण मार्गपौषोभयात्मकः)। मासेऽस्मिन् दिनमानं २७ घट्यासन्नं ज्ञेयम्।

अत्र धनुःस्थे रवौ मार्गशुक्लप्रतिपदि क्षयाहे सति ऊर्ध्वमंकितायां स्थितौ मार्गशीर्षे क्षयान्तगते स्मृत्यन्तरोक्तया विधया अंहस्पतौ चान्द्रे पौषेऽपि सांवत्सरिकं नानुष्ठानमर्हति, यतः पौषे-

ऽस्मिन् श्राद्धाय अपराह्णव्यापिनी शुक्लप्रतिपदा उभयत्र नोपलभ्यते, नापि पूर्वत्र सा सकल-सायाह्नव्यापिनी, अतः मकरस्थे रवौ चान्द्रे माघे सांवत्सरिकमेतत् विधानमर्हति। एवमेतच्छ्राद्धदिनं क्षयाख्यपौषात् (मासयुगलीकरणपक्षानुसारं मार्ग-पौषोभयात्मकात्) परतः स्थितस्य चान्द्रमाघस्य प्रतिपदि गच्छति। इत्थं स्मृत्यन्तर-प्रतिपादितदिशा मार्गशीर्षशुक्लप्रतिपदः श्राद्धं मासयुगलीकरणपक्षपातिनां मार्ग-पौषोभयात्मकं क्षयमासमुत्क्रम्य तत्परवर्त्तिनं चान्द्रमाघं प्रविष्टम्। किम्-एतेन माघोऽप्यत्र मासयुगलात्मकत्वं (मार्ग-माघोभयात्मकत्वं) वहति–इति प्रतिवादिनः स्वीकुर्युः? स्मृत्यन्तरकार एतेन वचनेन द्विसंक्रान्तस्य मासस्य मासयुग्मतां नाभिप्रैति, अपितु सौरपक्षानुसारं श्राद्धानुष्ठानमात्रायैव सः इमं वचनगतं नियमं न्यबध्नात्–इति स्फुटम्। इतरथाऽभिप्राये तस्य अभ्युपपन्ने तु पूर्वोदाहृतसदृशेषु स्थलेषु क्षयमासात् परवर्त्तिनि मासेऽपि मासयुग्मता पतेत्, यां सिद्धान्तः धर्मशास्त्रमित्युभयं न क्षमेत।

किञ्च उपरिनिर्दिष्टायां स्थितौ पौषेंऽहस्पतौ अप्राप्ते मार्गशुक्लप्रतिपदः श्राद्धस्य काले पूर्वस्मिन् (पौषांहस्पतिपूर्ववर्त्तिनि) मासे च श्राद्धानुष्ठाने तु पौषपूर्ववर्त्तिनः मासस्य मार्गशीर्षत्वं सिद्धमेव।

अपि च अत्र यदि दिनमाने २४।० तुल्ये, दृक्पक्षानुसारं पौषांहस्पतेः प्रतिपत् पूर्वदिने २४।१ तुल्ये इष्टे प्रारब्धा, परत्र च सा १४।२० तुल्ये इष्टे अपराह्णात्प्रागेव समाप्ता, (धनुः संक्रान्तिश्च पूर्वत्र २८।० तुल्य एव इष्टे घटिता) तदा पौषशुक्लप्रतिपदत्र पूर्वत्र सायाह्नम् न किंचिदपि स्पृशति, इति भूयः मार्गशुक्लप्रतिपदः श्राद्धं स्मृत्यन्तरवचनेन पौषांहस्पतौ अप्राप्तकालम्।

"स्मृत्यन्तरीयमेतद् वचनं मासिकाब्दिक - श्राद्धयोरेव व्यवस्थापकमिति स्वीकारेण 'मासिकाब्दिकयोरपि' इत्यत्र 'अपि' पदं निरर्थकं जायते"— इत्यपि अविमृश्य प्रयुक्ता युक्तिः। अत्र 'अपि'ना मासिकव्रतादिकर्मणां व्यक्तमाक्षेपात्। मासिकव्रतपर्वादिषु यथा चान्द्रो मासो गृह्यते तथैव सौरमासे तिथ्यभावे मासिकाब्दिकयोः अपि सः ग्राह्यः— इत्येवं 'स्मृत्यन्तर'कर्त्ता 'अपि'म् अत्र प्रायुंक्त।

पूर्वपक्षः (६)— 'दर्शद्वयं यदैकस्मिन् सौरे संसर्पको भवेत्। अंहस्पतिर्यदैकस्मिंश्चान्द्रे द्वौ संक्रमौ तथा॥ संसर्पोऽहस्पतिश्चेति द्विविधावधिमासकौ। मतौ पूर्वापरौ दुष्टौ परपूर्वौ शुभावहौ॥'—इतीदं वचनं संसर्पस्य पूर्वापरौ मासौ यथाक्रमम् अशुभशुभौ, अंहस्पतेश्च तौ यथाक्रममेव शुभाशुभौ निर्दिशति, येन संसर्पस्य क्षयपूर्ववर्त्तिनः असंक्रान्तस्य षष्टितिथ्यात्मकत्वं समर्थ्यते।

उत्तरपक्षः—अत्र वचसि संसर्पशब्दः सामान्याधिमासपरः, नाऽयं क्षयपूर्ववर्तिनमसंक्रान्तमुद्दिशति, इति "दर्शद्वयं यदैकस्मिन् ......" इत्यनया क्षयपूर्वापरवृत्तिनिरपेक्षं प्रवृत्तया संसर्पपरिभाषया सुप्रकाशम्। संसर्पशब्दस्य सामान्याऽसंक्रान्तमासपरता शास्त्रेषु बहुत्रान्यत्रापि उपलभ्यमाना ७०,७१ पृष्ठयोः प्रदर्शितैव। तथाहि अस्मिन् वाक्ये संसर्पस्य अधिमासतया निर्देशोऽपि आर्षवचनानां क्षयपूर्वभाव्यसंक्रान्तस्य अनधिमासत्वं वदतां प्रतिकूलः, इत्यपि अत्र व्यक्तं संसर्पः साधारणो विसंक्रान्तिः मासः, यस्य

षष्टितिथ्यात्मकत्वे न कोऽपि विप्रतिपद्यते। तदीयपूर्वापरवर्त्ति-मासद्वयविषयः अशुद्धशुद्धत्वविभाग एष वचनगतः अस्मदभिमतात् निर्विशेष एव। क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तस्तु साम्प्रतं संसर्पत्वेन विश्रुतः पराशरादिवचोभिः अधिमासत्वविरहितया नित्यं त्रिंशत्तिथ्यात्मक एव—इति बहुशः प्रतिपादितपूर्वम्।

यच्चात्र वचने मासद्वयात्मकस्य अंहस्पतेः पूर्वापरमासयोः शुद्धाशुद्धादेशः तस्येदं विशकलनम्—

अंहस्पतिः यद्यपि त्रिंशत्तिथ्यात्मक एव, तथापि स इत्थं षष्टितिथ्यात्मकतया गण्यते — अंहस्पतौ द्विसंक्रान्तिके समाविष्टयोः द्वयोः चान्द्रमासयोः पूर्वसंक्रान्तिसम्बद्धो चान्द्रमासः संसर्पस्य (क्षयपूर्ववर्त्तिनोऽसंक्रान्तस्य) शास्त्रप्रतिपादितानधिमासत्वाङ्गीकारेण अंहस्पतेः पूर्वत्र पृथक् प्राकाश्यमयते, येनाऽसौ अंहस्पतिः पूर्ववर्त्तिना स्वकीयैकभागरूपेण पार्थक्यमाश्रितेन मासेन सह गण्यमानः षष्टितिथ्यात्मकतामावहति। यथा सं. २०३९ तमे वैक्रमाब्दे आश्विनसंसर्पस्य त्रिंशत्तिथ्यात्मकताया-मङ्गीकृतायां मकर-कुम्भोभयसंक्रान्तिमतोंऽहस्पतेः माघमासात् पूर्वं पार्थक्यं प्राप्तः पौषः अंहस्पतेः माघस्यैव अङ्गम्, यतोहि मकरस्थे रवौ परिसमाप्यामावस्यः अयं पौषः माघेनैवानुस्यूतः मूले अवर्त्तत। एवम् अंहस्पत्याख्यमाघात् पृथक् स्थितोऽपि अयं पौषः "ब्राह्मणश्रमण"न्यायेन माघात् अंहस्पतेः अभिन्नत्वेनैव वचनेनानेन गृह्यते — इत्येव अंहस्पतिः षष्टितिथ्यात्मकतयाऽत्र चर्चितः।

अस्य च षष्टितिथ्यात्मकस्य अंहस्पतेः पूर्वो मासः (सं. २०३९ वैक्रमे पौषः) शुभावहः सावकाश-निरवकाशोभयविध-व्रत-पर्वादि-कर्मयोग्यः, परश्च साक्षात् अंहस्पतिः (सं. २०३९ वैक्रमे माघः)

दुष्टः विवाहादिकालान्तरसाध्यशुभकर्मानर्हः—एतत् वचनस्यास्य विश्लेषणम्, येन मासयुग्मता ग्रंहस्पतेः न तिष्ठति।

इदमेव व्याख्यानं श्रीवैद्यनाथदीक्षितस्याप्यभिप्रेतम्। तद्-यथा—

क्षयमासस्य स्वतन्त्रत्वेऽपि "परपूर्वौ शुभावहौ" इति वचनान्मासप्रयुक्तं कर्म पूर्वत्र मासे कर्त्तव्यम्। शुद्धमास-वत् स्वतन्त्रत्वात्तत्रैव कर्त्तव्यमिति केचित्। तदसाधु। 'संसर्पांहस्पती मासौ सर्वकर्मबहिष्कृतौ' इति स्मरणात्।

(स्मृतिमुक्ताफल)

"इदं दीक्षितीयमुक्तं क्षयाव्यवहितपूर्वसंसर्पविषयम्"—इति तु वक्तुः उक्तेः व्यवहिताऽव्यवहितपूर्वनिरपेक्षतया नादरणीयम्।

पूर्वपक्षः (७)— संसर्पोत्तरमासमारभ्य क्षयान्तं मध्य-पतितानां मासानां तत्तत्संक्रान्त्यनुसारेण मासत्वे प्राप्ते 'वृद्ध-कुमारीवर' न्यायेन लौकिकेनार्थप्राप्तं कार्त्तिकमार्गशीर्षत्वादि-स्वीकरणं तु मासलक्षणावहेलनाप्रसङ्गान्नोचितम्। 'वृद्धकुमारी-वर' न्यायस्थले वृद्धकुमार्या न कस्याप्यवहेलना कृता, अपितु अनुग्रहसमर्थेन्द्रद्वारा यस्य यस्याभाव आसीत् तत्सर्वं साधि-तम्। अत्र तु लक्षणस्यावहेलनं न प्रतिषिद्धमिति विशेषः।

उत्तरपक्षः— परम्परीणमासलक्षणस्य परासः संसर्पशुद्धि-पक्षधरैः नहि स्वप्रवर्त्तितशास्त्रमूलः, अपितु संसर्पस्य अनधि-मासत्व-प्रतिपादकैः शास्त्रैः आर्षैः इतरैश्चापि परम्परीणमास-

लक्षणोल्लंघनमनुमतमेवाऽनुस्रियते संसर्पपक्षधरैः । वसिष्ठादिभिश्चापि साक्षाद् वचसाऽनुमतमेतद् इति मासलक्षणावहेलनादोषारोपोऽयमनाधारः, अवहेलनं हि नियमोल्लंघनमननुमतम्, अनुमतं च तन्न तथा, नियमविशेष एव तत्। एवं "वृद्धकुमारीवर"-न्यायाऽविषयताऽपि प्रतिपाद्यस्यास्य प्रतिवादिभिः मासलक्षणावहेलामादाय स्थाप्यमाना निरस्ता।

परिशिष्टम्

[पञ्चनदप्रदेशस्य अमृतसरसः एको विद्वान् संसर्पस्य शुद्धौ विप्रतिपद्यमानः कांश्चित् आक्षेपान् प्रश्नान् च प्राकाशयत् ये बाहुल्येन वाराणसेय-गीर्वाण-वाग्वर्धिनी-परिषत्कृतेभ्यः तेभ्यः निर्विशेषा इति ते तैः सहैव पूर्वं कृत-प्रतिवादाः। अवशिष्टांश्च तान् तद्भिन्नान् अत्र प्रति-वच्मः।]

आक्षेपः (१)—'प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यादधिमासस्तथोत्तरः' इत्यत्र प्राकृतत्वं नाम द्वादश-मास-समानधर्मत्वम् त्रयोदशत्व-धर्मावच्छिन्नत्वं च परवर्त्तिनि असंक्रान्त एव। अयं प्राकृत-शब्दः संसर्पस्य त्रयोदशत्वसंख्यानिरसने फलितार्थः असं-क्रान्तत्व-मलत्व-नपुंसकत्वादि-अधिमासनिष्ठ-कर्मानर्हत्वादि-निषेध-विधि-निरसनेऽसमर्थ एव।

प्रतिवादः—संसर्पस्य त्रयोदशत्वनिरासं द्वादशमासधर्मत्वा-पादनं किम्प्रयोजनम्? इत्यत्रास्माकमनुयोगः। ननु श्रौतस्मार्त्त-क्रियायोग्यतैव द्वादशमाससधर्मता, तदयोग्यता च त्रयोदशता— इत्याह व्यक्तम् पैठीनसिः—

श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वा द्वादशे मासि कीर्त्तिताः ।
त्रयोदशे तु सर्वास्ता निष्फला इति संज्ञिताः ॥

एवं संसर्पस्य द्वादशत्वं प्रतिपादयता प्रतिवादिना गले आत्मनैव पातिता संसर्पशुद्धिः ।

आक्षेपः (२) — क्षयपूर्ववर्त्तिनः असंक्रान्तस्य संसर्प-संज्ञाविधायकेषु वचनेषु संसर्पः शुद्धः कर्मार्हः इति बोधात्मकं स्पष्टं पदं न दृश्यते ।

प्रतिवादः—"प्राकृत" शब्दः अधिमासप्रकरणे शुद्ध-कर्मार्ह-मासपरकतयैव शास्त्रेषु प्रयुक्तो दृश्यते—

तमतिक्रम्य तु यदा रविर्गच्छेत्कदाचन ।
आद्यो मलिम्लुचो ज्ञेयो द्वितीयः प्राकृतः स्मृतः ॥

इत्यादीनि वचांसि अत्र प्रमाणानि । किञ्च संसर्पं साक्षात् प्रशस्तं वदन्त्यपि वचांसि प्राप्नुमः । तद् यथा—

एकस्मिन्नपि वर्षे चेद् द्वौमासावधिमासकौ ।
पूर्वो मासः प्रशस्तः स्यादुत्तरस्त्वधिमासकः ॥

सुस्फुटं संसर्पस्य प्रशस्तत्वं प्रतिपादयद्भ्य एभ्यः वचोभ्यः गजनिमीलिकया दृश व्यक्तमपहरति प्रतिवादी विद्वान् ।

अपि च "एकस्मिन्नपि वर्षे......" इत्यत्र "उत्तरस्त्वधि-मासकः" इत्येवं "तु"कारेण संसर्पः अधिमासाद् व्यवच्छिन्नः[1] अधिमासनिष्ठकर्मानर्हताया अपि व्यवच्छिद्यते । कर्मानर्हताया हि

---

१. संसर्पस्य अनधिमासत्वं सुविस्तरं १७ तः २८ यावत् पृष्ठेष्वपि व्यवस्थापितमस्माभिः ।

अधिमासत्वं निमित्तम्, तदपाये नैमित्तिकभूतां तामपि अपायात् को वारयेत् ? इत्येवं भूयः सुस्थिता संसर्पस्य शुद्धिः ।

आक्षेपः (३)— सूर्यसंक्रमहीनतया संसर्पः नपुंसक इति कर्मानर्ह एव सः ।

प्रतिवादः— कालान्तरेण (सूर्य-चन्द्रवर्षान्तरेण) जाता संक्रमहीनतैव नपुंसकतामारोपयति मासि, नान्येति 'ज्योतिः-शास्त्र'वचनमिदम्—

> असंक्रान्तो हि यो मासः कदाचित्तिथिवृद्धितः ।
> कालान्तरात्समायाति स नपुंसक उच्यते ॥

इतरथाऽभ्युपपत्तौ तु अव्यवहितपूर्वोऽपि संसर्पः संक्रमशून्यतया नपुंसकतां यातः अकर्मण्यताया न मुच्येत । कर्मण्यतां च तस्य भवानपि स्वीकुरुते । "तत्प्राक्संग्यधिमासको यदि भवेत्....." इत्यनेन वचनेन तस्य कर्मण्यता सूपपादा-इत्यपि न, वचनस्यास्य अनार्षतया प्रामाण्यं भवतोऽपि अनभिमतम्, अनार्षस्य प्राकृतादि-शब्दव्याख्यानस्य कर्मार्हत्व-शुद्धत्व-प्रतिपादनस्य भवता पूर्वमेव अप्रमाणतया तिरस्कारात् । किञ्च "तत्प्राक्सङ्ग्यधिमासको...." अस्य व्याख्यानं अव्यवहितपूर्व-संसर्पस्य कर्मण्यतायाः पोषणमतात्त्विकमित्यपि १३४ पृष्ठे प्रत्यपादयाम । अगतिकतया अव्यवहित-पूर्ववृत्तेः संसर्पस्य कर्मार्हता आपतति स्वयम्-इत्यपि न, अगतिकता चैषा मृषैवेति सप्रपञ्चं कृतचरो विवेकः ।

आक्षेपः (४)— 'संसर्पमासं सत्कर्मनाशनं विद्धि नारद । वृषष्टिकल्पना नास्ति यस्मिन् संसर्पसंज्ञिते ।' —इति ब्रह्म-सिद्धान्त-वाक्ये उत्तरार्धभागेन पूर्वार्धं (संसर्पं सत्कर्मनाशनं

प्रतिपादयत्) गोपायन्ति संसर्पशुद्धिवादिनः।

प्रतिवादः— अविकलं पद्यमेतत् उद्धृतमस्माभिरिति पूर्वार्धस्य गोपनारोपो निर्मूलः। सत्कर्मनाशनतया त्वत्र संसर्पस्य अन्यगतिकसत्कर्मनाशनता अर्थसंकोचेन गृहीतव्या भवति। एतादृशेषु वाक्येषु संसर्पस्य कर्मबहिष्कृतत्वमर्थसंकोचेनैवोन्नेयमिति ७३ तः ८२ यावत् पृष्ठेषु प्रतिपादितचरमेव।

एष विद्वान् क्षयमासपर्यायम् 'अंहस्पतिम्' शास्त्रेषु क्षयप्रकरणे भूयो भूयः आम्रेडितमपि स्वपुस्तिकायां सर्वत्र विंशतिशः 'अहस्पतिम्' एव निरदिशत्— एतच्चरमं विस्मयास्पदमस्माकम् इतरेषां च तद्गतदृशाम्। क्षयमासवाचकतया इतरथा गृहीतमेतत्पदम् "अह्नःपतिः"[1] इति विगृह्य तदर्थमनुसृत्य च एतेन विदुषा कृता क्षयमासविषया सर्वापि व्यवस्थापना आधारस्य अतत्त्वतया स्वयमेव निर्भरं निरस्ता। नाधुना तत्प्रत्याख्यातये अस्मल्लेखनी श्रममर्हति।

इत्थमेवैष विद्वान् "संसर्पाय स्वाहा...मलिम्लुचाय स्वाहा... शुचये स्वाहा" इति मन्त्रे 'शुचि' पदमपि ज्येष्ठाषाढपरकं भ्रमेण कर्मार्ह(शुद्ध)मासपरकतया अगृह्णात्।

अन्ते चात्रेदमेव ब्रूमः—विदुषोऽस्य निःशेषं विश्लेषणं ज्योतिःशास्त्रीयोपपत्ति-विरोधनम्, हेमाद्रिमाधव - वाचस्पतिमिश्र-कृष्णभट्ट - कमलाकराऽनन्तदेव - गोकुलनाथोपाध्यायप्रभृति-निरवशेषमीमांसक - मीमांसापराङ्मुखम्, जाबालि - शातातपाद्यृषिमत - विसंवादि बहुविधाव्यवस्थाजननमिति नेदमशतोऽपि प्रमाकरणम्।

---

१. "अह्नःपतिः" इत्यस्य समस्तं रूपम् "अहस्पतिः" इति अपाणिनीयम्।

क्षयमासविमर्श सभाएं

वि. सं. २०३९ (शकाब्द १९०४) में घटित होने वाले क्षयमास के कारण व्रतोत्सव आदि में उत्पन्न विवाद के समाधानार्थ वैसे तो भारत में अनेक सभाएं आयोजित की गईं, लेकिन निम्नांकित छः संस्थाओं द्वारा आयोजित सभाएं विशेष चर्चायोग्य हैं :—

१. वेधशाला, अहमदाबाद ।

२. श्रीकाञ्चीकामकोटिमठ, मद्रास ।

३. श्रीसनातनधर्म महासभा, दिल्ली ।

४. श्रीगीर्वाणवाग्वर्धिनी सभा, वाराणसी ।

५. श्रीसनातनधर्मयुवक सभा, मेरठ (उ.प्र.) ।

६. अखिल भारतीय धर्मसंघ, चण्डीगढ़ शाखा ।

इन सभाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

१. वेधशाला, अहमदाबाद

इस संस्था द्वारा सं. २०३९ का पंचाङ्ग सं. २०३९ वर्ष के आरम्भ से लगभग २ वर्ष पूर्व ही प्रकाशित किया जा चुका था।

इस पंचाङ्ग में संसर्प आश्विन को अधिमास मान कर उसके (शुद्ध, निज) भाग में नवरात्रादि पर्व निर्दिष्ट किए गए। अनेक विद्वानों ने वेधशाला के अधिकारियों को आश्विन के अधिमासत्व पर उत्पन्न वैमत्य के समाधान के लिए अखिल भारतीय पंचाङ्ग-कारों, ज्योतर्विदों एवं धर्मशास्त्रज्ञों की सभा बुलाने के लिए प्रेरित किया[1]। इस प्रेरणा के फलस्वरूप इस संस्था ने २५ जुलाई १९८१ ई. को अहमदाबाद में एक सभा आयोजित की। सभा में ७९ विद्वान् उपस्थित हुए। दक्षिण भारत के केवल दो पंचाङ्गकार ही इसमें उपस्थित थे। उत्तर भारत के अनेकों पंचाङ्गकार यहां अनुपस्थित थे। इन ७९ विद्वानों में लगभग ४५ विद्वान् तो केवल महाराष्ट्र और गुजरात के ही थे। इन उपस्थित विद्वानों में लगभग २० विद्वान् व्याकरण, वेद, दर्शन आदि उन विषयों से ही सम्बद्ध थे, जिनका ज्योतिष से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन विद्वानों का पंचाङ्ग निर्माण से भी कोई वास्ता नहीं था[2]। इस सभा की आयोजिका संस्था (वेधशाला) द्वारा सं. २०३९ का पंचाङ्ग संसर्प आश्विन को अधिकमास मान कर पहिले ही प्रकाशित किया जा चुका था, अतएव संसर्प आश्विन को अधिमास सिद्ध करने की ओर इसका झुकाव सहज ही था।

इस सभा में उपस्थित विद्वानों को अपने विचार केवल भाषण द्वारा ही व्यक्त करने के लिए कहा गया। किसी प्रकार के वाद-विवाद का अवसर नहीं दिया गया। सभा के अन्त में सभापति द्वारा संसर्प को अशुद्ध (अधिमास) मानने का प्रस्ताव

---

१. यह प्रेरणा हम दोनों भाइयों द्वारा ही विशेषरूप से सर्वप्रथम की गई।

२. अहमदाबाद वेधशाला द्वारा इन ७९ विद्वानों की साइक्लोस्टायल्ड सूची, विद्वानों की उपाधि एवं addresses सहित प्रचारित की गई है। उसे देखने से यह स्पष्टत: ज्ञात होता है।

रखा गया, और इसके पक्ष में मत आमन्त्रित किए गए। हम तीनों भाइयों (प्रियव्रत शर्मा, शक्तिधर शर्मा, इन्दुशेखर शर्मा), दक्षिण भारत के अन्यतम उपस्थित दो पंचाङ्गकारों श्री सूर्यनारायण ज्योतिषाचार्य एवम् प्रो. कावूर शास्त्री[1] तथा Positional Astronomy Centre (P.A.C.) Calcutta (Govt. of India) के डायरेक्टर श्री अमलेन्दु बन्द्योपाध्याय M.Sc. ने इस बात का विरोध किया कि बहुमत द्वारा इस प्रस्ताव को पारित करना न्यायसंगत नहीं होगा, क्योंकि यहां सभा में उपस्थित ज्योतिर्वित् एवम् पंचाङ्गकार समस्त भारत का प्रातिनिध्य नहीं करते हैं, दक्षिण भारत के केवल दो ही पंचाङ्गकार यहां उपस्थित हैं, उत्तरभारत के भी सौ से भी अधिक सुप्रसिद्ध पंचाङ्गकार यहां अनुपस्थित हैं। इस आधार पर हमने सभापति एवं संस्था के अधिकारिगण से अनुरोध किया कि इस प्रस्ताव को उन पंचाङ्गकारों के पास भी डाक द्वारा भेजा जाए जो सभा में अनुपस्थित हैं। तदनन्तर उपलब्ध बहुमत के आधार पर अन्तिम निर्णय लिया जाए। हम भाइयों एवं Positional Astronomy Centre के डायरेक्टर तथा दक्षिणभारत के उन दो विद्वानों ने भी यह विश्वास दिलाया कि—इस प्रकार उपलब्ध किए गए अखिल भारतीय पंचाङ्गकारों के बहुमत के आधार पर पारित प्रस्ताव को जनहिताय, बुद्धिभेद दूर करने के लिए हम मान्यता देंगे, भले ही यह हमारी दृष्टि में शास्त्रविरुद्ध है। हमारे इस सुझाव को सभापति महोदय एवं संस्था के अधिकारिवर्ग ने तर्कसंगत बतलाया और यह प्रस्ताव वापिस

---

१. आश्चर्य है इन दोनों दाक्षिणात्य ज्योतिषियों के नाम अहमदाबाद वेधशाला द्वारा प्रचारित सूची में संसर्पांशुद्धिपक्षीय विद्वानों के साथ लिखे गए हैं, जो बिल्कुल गलत हैं।

ले लिया गया तथा निर्णय किया गया कि इस प्रस्ताव को डाक द्वारा भारत के सभी पंचाङ्गकारों के पास उनका अभिमत जानने के लिए भेजा जाए। इसी निर्णय के साथ सभा विसर्जित कर दी गई।

लेकिन आश्चर्य की बात है—वेधशाला के अधिकारियों ने अहमदाबाद के सभी स्थानीय गुजराती समाचारपत्रों में यह समाचार प्रकाशित करवा दिया कि — वेधशाला द्वारा २५ जुलाई १९८१ को आयोजित सभा में उपस्थित विद्वानों ने सं. २०३९ वि. के क्षयमास से पूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास आश्विन को बहुमत से अधिकमास मान लिया है और तदनुसार सन् १९८३ में दशहरा २७ अक्तू. और दीपावलि १५ नवम्बर को निश्चित कर दी गई है। यही नहीं वेधशाला के सचिव-महोदय ने इसी निर्णय को सभा का अन्तिम निर्णय बतलाते हुए एक साइक्लोस्टायल्ड प्रपत्र भी भारत के सभी पंचाङ्गकारों को भेज दिया। अहमदाबाद वेधशाला की सभा के इस निर्णय पर भारत के अनेक मूर्धन्य पंचाङ्गकारों ज्योतिर्विदों एवं धर्म-शास्त्रज्ञों ने आश्चर्य प्रकट किया और इसके विरोध में प्रपत्र भी प्रकाशित किए। हम दोनों भाई भी इस सभा में उपस्थित थे— इसलिए अनेक सिद्धान्तज्ञ ज्योतिषियों ने हमें पत्र लिखे और हमसे पूछा कि क्या आपने भी इस असैद्धान्तिक, उपपत्तिविरुद्ध मत का उस सभा में समर्थन किया है? विद्वानों की इस भ्रान्ति को दूर करने के लिए हमने वेधशाला सभा के प्रपत्रों का विरोध किया, अपना स्पष्ट अभिमत भारतीय पंचाङ्गकारों को प्रपत्रों, लेखों द्वारों स्पष्ट किया कि हम आश्विन संसर्प को अधिमास नहीं मानते, इस लिए यह मास त्रिंशत्तिथ्या-

त्मक ही है। हमने वेधशाला के सचिवमहोदय को सभा के निर्णय को अन्यथा प्रचारित करने के विरुद्ध पत्र भी दिया। Positional Astronomy Centre, Calcutta के डायरेक्टर श्री अमलेन्दु वन्द्योपाध्याय जी ने भी वेधशाला के अधिकारिवर्ग एवं सभा के तात्कालिक सभापति को इस विरोध में पत्र दिया और उनसे सभा के प्रस्ताव को मिथ्या प्रचारित करने वाले उनके प्रपत्र को वापिस लेने तथा सभा के यथार्थ निर्णय को प्रसारित करने के लिए अनुरोध किया[1]। लेकिन वेधशाला के अधिकारिवर्ग एवं सभापति महोदय इस विषय में सर्वथा चुप रहे, और उन्होंने वेधशाला सभा के इस अपारित प्रस्ताव को पारित प्रस्ताव के रूप में खूब प्रचारित किया। हम दोनों भाइयों ने भी वेधशाला के इस मिथ्या प्रचार के विरुद्ध अपने शास्त्रीय पक्ष के समर्थन में अनेक लेख-प्रपत्र प्रकाशित किए।

यहां यह बतला देना आवश्यक है कि वेधशाला अहमदाबाद की इस ज्योतिर्वित्सभा में पारित किए जाने वाले इस प्रस्ताव के अनुसार सं. २०३९ वि. में शुक्लादि पौषमास सर्वथा लुप्त हो रहा था, जिसका हम दोनों भाइयों ने घोर विरोध किया। पौषमास का लोप मान लेने पर पौषमास के व्रत-पर्व भी लुप्त हो जाएंगे— यह सिद्धान्त वेधशाला के प्राच्य विद्या विभाग के विद्वान् डा० हिम्मतराम जानी जी ने स्थापित किया। जब हमने उनसे यह पूछा कि— सिक्खों के गुरु श्रीगोबिन्दसिंह

---

१. श्री अमलेन्दु वन्द्योपाध्याय जी ने अपने इस पत्र की प्रतिलिपि हमें भेजी थी, जो हमारे पास सुरक्षित है, इसे १७-२-८२ की Constitution Club Delhi में आयोजित Press Conference में संवाददाताओं को भी दिखाया गया था।

जी का जन्मदिन पौषशुक्ल सप्तमी को पड़ता है, मौनी अमावस्या भी इसी शुक्लादि पौष में पड़ती है, इसी प्रकार इस मास के अन्य अनेक पर्वोत्सव है, क्या हमें ये सभी सं. २०३९ में नहीं मनाने होंगे ? इसके उत्तर सभापतिमहोदय एवं वेधशाला के प्राच्य विभाग के निदेशक महोदय ने कहा कि — हां, ये सभी त्योहार सं. २०३९ वि. में नहीं मनाए जाएंगे। प्राच्य विद्याविभाग के निदेशक महोदय डा० श्री हिम्मतराम जानी ज्योतिषाचार्य का इसी विषय पर लिखा एक प्रपत्र हमारें पास सुरक्षित है, जिसमें यह बात स्पष्टरूप में लिखी हुई है।

वेधशाला के सं. २०३९ वि. (शकाब्द १९०४) के पंचाङ्ग में क्षयमास में भी विवाह मुहूर्त्त लगा दिए गए हैं— जो सर्वथा अशास्त्रीय है।

कहने का सारांश यह है–वेधशाला अहमदाबाद का पंचाङ्ग-विभाग संसर्प एवं क्षयमास में कर्त्तव्याकर्त्तव्य का यथार्थ निर्देश करने में विफल रहा है।

(यद्यपि मैं भी वेधशाला अहमदाबाद की "व्रतपर्व निर्णायिका समिति" से सम्बन्ध रखता था, लेकिन संसर्प आश्विन को अधिमास मानने का मैंने स्पष्ट विरोध किया, इसी मतभेद के कारण मुझे इस समिति से त्याग पत्र देना पड़ा —प्रियव्रत शर्मा)

२. श्रीकाञ्चीकामकोटिमठ, मद्रास द्वारा आयोजित अखिल भारतीय ज्योतिर्वित्सम्मेलन

यह सम्मेलन काञ्चीकामकोटिपीठाधिपति अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीजयेन्द्र सरस्वती महाराज

जी के पवित्र सान्निध्य में गुरुवायूर (केरल) में १७ से १९ अग.'८१ (तीन दिन) तक लगातार चला। इस सम्मेलन में भारत के लगभग सभी प्रान्तों के मूर्धन्य पंचाङ्गकार, ज्योतिर्वित् एवं धर्मशास्त्रज्ञों ने भाग लिया। श्री जगद्गुरु शंकराचार्य जी की सन्निधि में तीन दिन तक लगभग ४-४ घण्टों के छः अधिवेशनों में विस्तृत शास्त्रचर्चा के अनन्तर बहुमत से संसर्प को अनधिमास (शुद्ध), त्रिंशत्तिथ्यात्मक, मासिककृत्यों के लिए ग्राह्य मानने का प्रस्ताव पारित हुआ, जिसे भारत के सभी पंचाङ्गकारों को जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यकाञ्चीमठ की मुद्रा से अङ्कित पत्र पर भेजा गया। पीठासीन जगद्गुरु शंकराचार्य श्री जयेन्द्र सरस्वती एवं इसी पीठ के अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु श्री वृद्धशंकराचार्य जी ने भी इस निर्णय का समर्थन किया।

इस सम्मेलन में मद्रास के सुप्रसिद्ध सिद्धान्तवेत्ता प्रो L.V.S. Mani एवं हम दोनों भाई संसर्प की अनधिमासता (मासिककृत्यों के लिए ग्राह्यता) का समर्थन कर रहे थे, जब कि दक्षिण भारत के लब्धकीर्त्ति सिद्धान्तज्ञ पिडपर्त्ति श्रीचिनकृष्णमूर्त्ति शास्त्री, महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध पंचाङ्गकार श्रीढुँढिराज दाते एवम् अहमदाबाद वेधशाला के प्राच्य विद्याविभाग के निदेशक डा. श्री हिम्मतराम जानी आदि विद्वान् इसके विपरीत मत (संसर्प को अधिमास, मासिक कृत्यों के लिए अग्राह्य मानने वाले मत) का समर्थन कर रहे थे। इस सम्मेलन में चर्चा के समय जो युक्तियां हमने उपस्थापित कीं उनका प्रचुर भाग इस पुस्तक के १ से ८५ पृष्ठ तक के निबन्ध में निबद्ध है।

सं. २०३९ वि. (शकाब्द १९०४) में घटित होने वाले क्षयमास से सम्बद्ध वैमत्य के अपाकरण के लिए जितनी भी

ज्योतिर्वित्सभाएं भारत में आयोजित हुईं उन सबमें से अधिक महत्त्वपूर्ण गुरुवायूर (केरल) की यह सभा मानी जा सकती है, जिसमें दोनों पक्षों के विद्वान् उन्मुक्तरूप से सप्रपञ्च अपने विचार अभिव्यक्त करने के लिए स्वतन्त्र थे।

यहां चर्चा की माध्यम भाषा केवल संस्कृत ही थी।

३. श्रीसनातनधर्म महासभा, दिल्ली द्वारा आयोजित 'अखिल भारतीय ज्योतिर्वित् एवम् पंचाङ्गकर्त्ता सम्मेलन'—

यह विशाल सम्मेलन श्रीसनातनधर्म महासभा दिल्ली के अध्यक्ष श्रीप्रेमचन्द जी गुप्ता द्वारा ता. १४ फरवरी १९८२ई. को गुजराती समाज (राजनिवास मार्ग) दिल्ली में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में भारत के सभी प्रान्तों के पंचाङ्गकार एवं ज्योतिर्विदों ने भाग लिया सम्मेलन में उपस्थित विद्वानों ने लगभग १० घण्टा की लम्बी शास्त्रचर्चा-विचारविनिमय के अनन्तर सर्वसम्मति से सं० २०३९ वि. में क्षयमास से पूर्व-वर्त्ती असंक्रान्तमास आश्विन को शुद्ध (त्रिंशत्तिथ्यात्मक) एवम् नवरात्र आदि मासिककृत्यों के लिए ग्राह्य स्वीकार किया, और एतद्विषयक प्रस्ताव पारित करके भारत के सभी पंचाङ्गकारों को सनातनधर्ममहासभा दिल्ली द्वारा भेजा गया।

अखिल भारतीय स्तर के इन तीन ज्योतिर्वित्-सम्मेलनों के अलावा कुछ और भी स्थानीय क्षयमासत्-विमर्श सभाएं आयोजित हुईं, उनका अपेक्षित विवरण इस प्रकार है :—

४. श्रीगीर्वाणवाग्वर्धिनी सभा, वाराणसी द्वारा आयोजित क्षयमासविचार सभा

क्षयमास पर यह सभा २४-१०-१९८१ को शिवालाघाट वाराणसी में काशी के वर्त्तमान नरेश महामहिम श्रीविभूतिनारायणसिंह शर्मा जी की अध्यक्षता में हुई। इस सभा में हम दोनों भाइयों को ही बाहिर से बुलाया गया था, शेष सभी विद्वान् केवल बनारस के ही थे। इस प्रकार यह एक स्थानीय सभा ही थी। बनारस के वे सभी विद्वान्[1] जो इस सभा में हम से विचारविमर्श (वाद-विवाद) के लिए उपस्थित थे, संसर्पमास को अशुद्ध (अधिकमास) मानने वाले थे। इस मत के समर्थन में उन विद्वानों के नाम से लेख आदि भी पहिले प्रकाशित हो चुके थे। इनमें एक दो पंचाङ्गकार भी थे, जिन्होंने संसर्प को अपने पंचाङ्गों में अधिकमास के रूप में निर्दिष्ट किया था। उनके पंचाङ्ग इस सभा से पूर्व ही प्रकाशित भी हो चुके थे। यह सब देखते हुए हमने श्रीकाशीनरेश से अनुरोध किया कि सभा में हमारे प्रतिवादी अपना मत प्रकाशित कर चुके हैं, हमभी अपना मत प्रकाशित कर चुके हैं, इस स्थिति में यहां अनौपचारिक रूप से ही विचारविमर्श हो तो ज्यादा अच्छा है— श्रीकाशी नरेश ने हमारा यह अनुरोध मान लिया। इसी आधार पर उन्होंने वहां संवाददाताओं को भी सभा के वाद-विवाद के बारे में किसी प्रकार का समाचार प्रकाशित न करने के लिए कहा। वाद-विवाद प्रारम्भ होने से पूर्व नियामक और मध्यस्थ के रूप में प्रतिष्ठापित करने के लिए चार-पांच ऐसे विद्वानों के नाम

---

१. इस सभा में शास्त्रचर्चा में भाग लेने वाले लगभग सभी विद्वान् काशी की ही श्रीगीर्वाणवाग्वर्धिनी सभा से सम्बद्ध थे।

प्रस्तावित किए गए जिनके क्षयमाससम्बन्धी प्रकाशन पहिले हो चुके थे और वे प्रकाशन हमारे मत के विरोध में लिखे गए थे। नियामकता एवं मध्यस्थता के लिए प्रस्तावित इन लगभग सभी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गई एक "सं २०३९ का क्षयाधिमास-निर्णय" नामक पुस्तिका का विमोचन इस सभा के प्रारम्भ में ही किया गया था। इस पुस्तिका का प्रतिपाद्य विषय संसर्प की अधिमासता था, जिसको कि हम दोनों भाई पूर्वपक्ष मानते थे। इस दृष्टि से हमने उन विद्वानों को, जो स्पष्टत: हमारे अनभिमत मत के समर्थक थे, नियामक एवं मध्यस्थ स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। क्योंकि वहां सभा में कोई भी विद्वान् निष्पक्ष नहीं था अतएव अनौपचारिक रूप से दोनों पक्ष अपने-अपने मत प्रकाशित कर दें—यही सुझाव हमने रखा। एक और बात यहां बतलाना आवश्यक है— कि मध्यस्थता एवं नियामकता के लिए प्रस्तावित विद्वानों में केवल एक ही विद्वान् ज्योतिष शास्त्रज्ञ थे, शेष सभी मीमांसक थे, ज्योतिष शास्त्र उनका विषय नहीं था। श्री काशिराज ने हमारे सुझाव को मान कर हमें अपने विचार उपस्थापित करने के लिए कहा। हम दोनों द्वारा संसर्प की शुद्धता, अनधिमासता के समर्थन में अपने तर्क प्रस्तुत करने के अनन्तर हमसे उपस्थित विद्वानों ने जो प्रश्न किए वे निम्नांकित हैं :—

(१) व्यवहित संसर्प को मासिक कृत्यों के लिए ग्राह्य कैसे माना जा सकता है, जबकि उसका शुद्ध (निज) मास विद्यमान है? शुद्ध मास के होते हुए आश्विन संसर्प के मासिक कृत्य असंक्रान्त में नहीं किए जा सकते।

(२) व्यवहित संसर्प को त्रिंशत्तिथ्यात्मक मानने पर

संसर्पोत्तरवर्त्ती क्षयमास पर्यन्त मासों के नाम सूर्य-संक्रान्तियों से सम्बद्ध नहीं रहते।

(३) संसर्पमात्र को शुद्ध, कर्मार्ह मानने पर "संसर्पांहस्पती मासौ सर्वकर्मबहिष्कृतौ" इस प्रकार के वाक्यों में प्रयुक्त "सर्वकर्मबहिष्कृतौ" में "सर्व" शब्द का अर्थ-संकोच द्वारा "अन्यगतिक कर्म" अभिप्राय किस आधार पर आप लेंगे ?

केवल ये तीनों ही विमर्शविषय रहे। हमने इन तीनों प्रश्नों-आक्षेपों का प्रतिवाद मीमांसा, अधिमासोपपत्ति एवम् धर्म-शास्त्रवाक्यों द्वारा किया। इन तीनों प्रश्नों-आक्षेपों का प्रतिवाद, जो उस सभा में उपस्थापित किया गया था, इस पुस्तक में क्रमशः ३२ से ३५, २९ से ३२ एवम् ६६ से ८२ पृष्ठों पर दिया गया है।

इस सभा में काशी के ज्योतिर्वित्समाज की ओर से विचार-विमर्श में भाग लेने वाले मुख्य विद्वान् केवल मीमांसा के ही पण्डित थे, जिससे हमारे अनेक सिद्धान्तज्योतिष सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर देने में वे असफल रहे। संसर्पमात्र को अनधिमास माना जाए या केवल अव्यवहित संसर्प को ही —इस विमर्श में जब अधिमासोपपत्ति सिद्धान्त के आश्रयण की बात हमने कही तब तब उन्होंने केवल मीमांसा को ही आधार मान कर निर्णय करने पर बल दिया। अधिमास की उपपत्ति से दोनों प्रकार के संसर्प अनधिमास सिद्ध होते हैं — ज्योतिषशास्त्रप्रति-पादित इस सिद्धान्त को वे तिरस्कृत कर स्वकल्पित व्यवस्था को ही महत्त्व दे रहे थे। जब उनका ध्यान माघ कृष्ण और माघ शुक्ल पक्षों के पौर्वापर्यव्यत्यय की ओर दिलाया गया

तब उन्होंने इसे भी शास्त्रसंगत कह दिया। जब उनसे पुनः यह पूछा गया कि—सं. २०३९ में माघ कृष्ण में प्रारम्भ हो कर माघ शुक्ल में समाप्त होने वाले व्रत-पर्व कैसे अनुष्ठित होंगे, तब वे कोई उत्तर नहीं दे पाए। जब उनसे यह पूछा गया कि क्या बात है—सूर्यसिद्धान्त आदि सभी आर्ष सिद्धान्त ग्रन्थों में पठित युगाधिमास संख्या में व्यवहितपूर्व एवम् अव्यवहितपूर्व—दोनों प्रकार के संसर्प समाविष्ट क्यों नहीं है?—तो वे सर्वथा निरुत्तर रहे। "संसर्प को सभी ऋषियों ने अधिकमास मानने से इन्कार किया हैं तब उसके शुद्ध (निज) मास की कल्पना आप कैसे कर रहे हैं? संसर्प के शुद्ध (निज) मास का अस्तित्व यदि आपके मतानुसार मान लिया जाए तो क्या संसर्प को अनधिमास घोषित करने वाले वाक्यों से विरोध नहीं होगा?—इस कथन के उत्तर में भी वे मूक रहे, और विषयान्तर का आश्रय लेते रहे।

मीमांसक होने के कारण उन वाराणसेय विद्वानों का आग्रह रहा कि ज्योतिष के सिद्धान्त संसर्प के अधिमासत्व या अनधिमासत्व के निर्णायक नहीं हो सकते, जबकि हम इसके निर्णायक के रूप में अधिमासोपपत्ति सिद्धान्त को ही प्रामाणिक बतलाते थे।

व्यवहित संसर्प को अनधिमास मानने पर तत्परवर्त्ती क्षयमास पर्यन्त मासों के परम्परागत नामों के व्यत्यय पर उठाई गई वाराणसेय विद्वानों की आपत्ति का निराकरण जब तर्कानुगत विवेचन[1] द्वारा कर दिया गया तब भी वे इसे स्वीकार करने को उद्यत नहीं हुए। हमारे द्वारा उपस्थापित तर्क-मीमांसा का वे प्रतिवाद तो कर नहीं पाए लेकिन उन्होंने यह प्रतिज्ञापूर्वक कहा कि इस प्रकार मासों की परम्परागत नामकरणपद्धति के

---

१. यह विवेचन पृष्ठ २९ से ३२ तक दिया गया है।

परित्याग का निर्देश किसी भी शास्त्र में नहीं हैं—इस लिए हम इस व्यत्यय को अशास्त्रीय मानते हैं। इसके उत्तर में हमने जब वसिष्ठ का 'चैत्रादिमासेषु यथाक्रमेण ....'[1] यह वाक्य (जो क्षयमास आने पर मासों के परम्परागत नामकरण के नियम के उल्लंघन की बात स्पष्ट रूप में कहता है) उन विद्वानों के सम्मुख रखा गया तब वे अवाक् रह गए, वसिष्ठसंहिता के इस वचन को वे विचारणीय कह कर उठ खड़े हुए और बोले हमने यह वचन आज तक नहीं सुना और न ही कहीं पढ़ा है, अतः हम इसे मूल ग्रन्थ में देख कर ही इसे प्रमाण मानेंगे, अन्यथा नहीं। जब उन्हें दाक्षिणात्य विद्वान् पिडपर्त्ति श्री चिनकृष्ण-मूर्त्ति शास्त्री जी के "क्षयाधिमासनिर्णय" में उद्धृत यह वाक्य दिखाया गया तब भी उन्होंने इसे प्रमाण मानने से इन्कार कर दिया। हमने उनसे यह भी कहा कि— जितने भी वाक्य उन्होंने भी अपने पक्ष के समर्थन में उद्धृत किए हैं वे भी निबन्धग्रन्थों में ही मिलते हैं। यदि उन वाक्यों को मूलग्रन्थ में देखे बिना प्रमाण मानने से हम भी इन्कार कर दें तब उनकी क्या स्थिति होगी? हमारे इस तर्क को भी उन्होंने उपेक्षित कर दिया और इसी हंगामे की स्थिति में एक वाराणसेय मीमांसक विद्वान् ने खड़े हो कर सहसा अपना निर्णय सुना दिया कि— इस वादविवाद से हम इसी निर्णय पर पहुंचे हैं कि संसर्प अव्यवहितपूर्वता की स्थिति में ही शुद्ध (अनधिमास) होता है, अन्यथा नहीं। जिस मीमांसक विद्वान् ने स्वयं मध्यस्थ बन कर यह निर्णय घोषित किया, आश्चर्य की बात है— उस मीमांसक विद्वान् से विचार-विमर्श के मध्य प्रसंगवश

१. देखें पृष्ठ ३२.

जब यह पूछा गया कि 'असंक्रान्त आश्विन मास के अनन्तरवर्त्ती जिस मास में तुला संक्रान्ति है उस मास को किस नाम से पुकारा जाएगा' —तब उन्होंने उत्तर दिया कि उसे अधिमास कहा जाएगा। जब फिर से यही प्रश्न उनसे पूछा गया तब पुनः उनका उत्तर यही था—कि वह मास अधिमास होगा।

इस प्रकार स्पष्ट है— इस सभा में विचार-विमर्श में भाग लेने वाले अनेक विद्वान् ज्योतिष के मूलभूत अधिमासोत्पत्ति आदि अपेक्षित सिद्धान्तों से अपरिचित थे।

यह सभा लगभग दो घण्टा तक ही चली। कालाल्पता के कारण उपर्युक्त तीन-चार बातों पर ही इसमें विचार विमर्श हो सका।

श्रीकाशीनरेश इस सभा में केवल २०-२५ मिनट ही विराजमान रहे, तदनन्तर किसी आवश्यक कार्यवश उन्हें सभा छोड़ कर जाना पड़ा।

इस सभा का संक्षिप्ततम विवरण श्रीगीर्वाणवाग्वर्धिनी सभा काशी एवं काशिराजन्यास द्वारा प्रकाशित किया गया है, जिसमें हमारे अपने पक्ष के समर्थन में दिए गए हमारे तर्कों को तिरोहित कर उन्होंने एकमात्र अपने निर्णय को उपस्थापित किया है। यह विवरण सर्वथा एकपक्षीय है। इस विवरण में छः मध्यस्थ विद्वानों के नाम भी दिए गए हैं। जैसा कि हम पहिले बतला चुके हैं—लगभग ये सभी विद्वान् क्षय-मास विवाद पर अपने एकपक्षीय विचार लेख आदि द्वारा इस

सभा से पूर्व ही प्रकाशित कर चुके थे, अतः इन्हें मध्यस्थ एवम् नियामक के रूप में हमने स्वीकार ही नहीं किया। प्रतिवादी पक्ष के साक्षात् समर्थक विद्वानों को कोई समझदार वादी मध्यस्थ के रूप में भला कैसे स्वीकार कर सकता है ?

५. श्रीसनातनधर्मयुवक सभा, मेरठ (उ.प्र.) द्वारा आयोजित क्षयमास विचार सभा

यह क्षयमासविचार सभा श्रीसनातनधर्म युवक सभा लालकुर्त्ती, मेरठ (उ. प्र.) में २५ मार्च १९८२ ई. को ज्योतिष-मार्त्तण्ड श्री पं. विष्णुदत्त जी शर्मा शास्त्री, ज्योतिषाचार्य, व्याकरणाचार्य, M.A. (संस्कृत - हिन्दी), संस्कृत प्राध्यापक ऐन. ए. ऐस. कालिज मेरठ की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। इस सभा में श्रीविल्वेश्वरसंस्कृतमहाविद्यालय, मेरठ के भूतपूर्व प्रधानाचार्य श्री पं. हरिदत्त जी शर्मा व्याकरणाचार्य, पं. श्री जगन्नाथ जी व्यास M A., पं. श्री विनोद कुमार शर्मा ज्योतिषाचार्य, श्री गिरिजा शंकर शर्मा M.A. पुराणेतिहासाचार्य - साहित्याचार्य, डॉ. श्री नगेन्द्रमुनि M.A , डॉ. श्री राम किशोर शर्मा M.A. साहित्याचार्य एवम् डॉ. श्री सत्यपाल शास्त्री M A. आदि ७३ महाविद्वानों ने भाग लिया। विचार के अनन्तर सभा के विद्वानों द्वारा सर्वसम्मति से यही निर्णय लिया गया कि— "डॉ शक्तिधर शर्मा द्वारा समर्थित संसर्पशुद्धि सिद्धान्त ही शास्त्रीय है। तदनुसार सं. २०३९ वि. में संसर्प आश्विन को अधिकमास न माना जाए और नवरात्रादि मासिक व्रतोत्सव इसी असंक्रान्तमास में अनुष्ठित किए जाएं। इसकी पुष्टि में उपस्थित विद्वानों ने जो शास्त्रीय प्रमाण एवम् तर्क

उपस्थापित किए उन्हें प्रकाशित करके श्री सनातन धर्म युवक सभा, मेरठ द्वारा व्रत-पर्वों की शुद्ध तिथियों की सूची के साथ धार्मिक जनता के उपकारार्थ बिना मूल्य वितरित किया गया।

६. अखिल भारतीय धर्मसंघ, चण्डीगढ़ शाखा

अखिल भारतीय धर्मसंघ द्वारा आयोजित सर्ववेद शाखा सम्मेलन के अवसर पर चण्डीगढ़ में ता. १६-५-८२ को क्षयमास से सं. २०३६ वि. के व्रत-पर्वों के वारे में उत्पन्न मतभेद के समाधानार्थ एक शास्त्रार्थ सभा का आयोजन किया गया। इस शास्त्रार्थ सभा का आयोजन जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीनिरञ्जनदेव तीर्थ महाराज जी द्वारा किया गया था। सम्मेलन के आयोजकों ने हम दोनों भाइयों को इस शास्त्रार्थ सभा में भाग लेने के आमन्त्रित किया और उन्होंने कहा कि इस शास्त्रार्थ में काशी आदि के अन्य अनेक ज्योतिषी भाग लेंगे। सभास्थल पर १६-५-८२ को हम दोनों पहुंचे तो पता चला कि अन्य कोई एक भी विद्वान् इस शास्त्रार्थं में भाग लेने के लिए वहां उपस्थित नहीं है। हम संसर्पमात्र को शुद्ध मानते हैं, श्री शंकराचार्य पुरी जी केवल अव्यवहित संसर्प को शुद्ध मानते हैं। वहां सभा में बिना किसी निर्णायक या मध्यस्थ का निर्धारण किए ही श्रीशंकराचार्य पुरी जी ने हमारे पक्ष (संसर्पशुद्धिपक्ष) के विरोध में अपना भाषण प्रारम्भ कर दिया, अनेक अशास्त्रीय आक्षेप हमारे पक्ष पर उन्होंने किए। हमें अपना पक्ष प्रतिपादित करने के लिए प्रारम्भ में केवल ७-८ मिनट ही दिए गए। वे हमारे वक्तव्य के बीच ही अनेक प्रकार की उट्टंकनाएं करने लगे, और हमें अपने पक्ष के समर्थन तथा उस पर किए गए

आक्षेपों के प्रतिवाद के लिए अवसर ही नहीं दिया गया। श्री शंकराचार्य जी ने संसर्पाशुद्धिपक्ष के समर्थन तथा हमारे पक्ष (संसर्पशुद्धिपक्ष) के लिए निराकरण के लिए लगभग ४५ मिनट बोलने के तुरन्त बाद अपना निर्णय सभा में उपस्थित जनता को सुना दिया। परिणामस्वरूप हमें अपना पक्ष उपस्थापित किए बिना ही सभा से लौट आना पड़ा। लगभग एक घण्टा यह सभा चली। इस सभा में दिया गया हमारा एवं श्री शंकराचार्य पुरी का निरवशेष वक्तव्य हमारे पास Tape किया हुआ सुरक्षित है।

यहां पर हम जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य पुरी द्वारा इस सभा में संसर्पशुद्धिपक्ष पर किए गए आक्षेपों की शास्त्रीयता पर विचार करेंगे।

श्रीशंकराचार्यजी ने अपने पक्ष की पुष्टि और संसर्पशुद्धिपक्ष के खण्डन में निम्नांकित ५ आक्षेप/विवेचन उपस्थापित किए :—

(१) क्षयमाससम्बन्धी विवाद धर्मशास्त्र का विषय है, ज्योतिष का नहीं, अतः इस विवाद में ज्योतिष के सिद्धान्त अपेक्षित नहीं हैं।

(२) क्षयमास से पूर्ववर्त्ती प्रत्येक असंक्रान्तमास को संसर्प नहीं कहा जाता, अपितु क्षयमास से अव्यवहितपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास को ही संसर्प कहा जाता है जिसे कर्मार्ह माना गया है। इसलिए संसर्प की परिभाषा इस प्रकार करनी होगी--'क्षयाव्यवहितपूर्वत्वे सति कर्मार्हत्वं संसर्पत्वम्'। जो लोग व्यवहित पूर्व असंक्रान्तमास को संसर्प कहते हैं, वे गलत हैं।

(३) व्यवहितपूर्व असंक्रान्तमास का शुद्ध (निज) मास जब उपलब्ध है तब उसके मासिक कृत्य अशुद्ध (असंक्रान्त) मास में करना गलत है।

(४) जबकि "मासत्रयं त्याज्यमिदं प्रयत्नाद् विवाहयज्ञोत्सवमंगलेषु" — यह वचन अंहस्पति एवं क्षयमास से पूर्वापरवर्त्ती दोनों असंक्रान्त मासों में उत्सवों का निषेध करता है, तब सं. २०३९ में क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास आश्विन में नवरात्र, विजयादशमी आदि उत्सव कैसे मनाए जा सकते हैं?

(५) सं. २०३९ के क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्तमास आश्विन को संसर्पशुद्धिपक्ष वाले पंचाङ्गकार मासिक व्रत-पर्वादि के लिए तो ग्राह्य मानते हैं लेकिन विवाहादि शुभ-कृत्यों के लिए वे उसे अग्राह्य मानते हैं—क्या यह विरोध नहीं है?

श्रीशङ्कराचार्य पुरी द्वारा किए गए उपर्यंकित पांच आक्षेपों/विवेचनों को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीशङ्कराचार्य जी को क्षयमास एवम् संसर्प सम्बन्धी अनेक मूलभूत बातों का भी ज्ञान नहीं है। इनके इन आक्षेपों/विवेचनों में से (१), (३), (४) एवम् (५) आक्षेपों/विवेचनों के सविस्तर उत्तर इस पुस्तक के क्रमशः पृष्ठांक १२२-१२३, ३२ से ३४, ६६ से ८१ एवम् ११० पर पढ़िए। आक्षेप (२) का उत्तर इस प्रकार है:—

सभी आर्ष एवं अनार्ष धर्मग्रन्थों में व्यवहितपूर्व और अव्यवहितपूर्व—दोनों प्रकार के असंक्रान्तमासों को "संसर्प" संज्ञा दी गई है। केवल अव्यवहितपूर्व असंक्रान्तमास को ही 'संसर्प" नाम से पुकारा जाता है—यह तो श्री शंकराचार्य जी की स्पष्ट भ्रान्ति

है। अपि च भारत के उन सभी सं. २०३९ वि. के काशी आदि के पंचाङ्गों में भी, जिनमें क्षयमास से व्यवहितपूर्व असंक्रान्त आश्विन को अशुद्ध माना गया है, आश्विन को "संसर्पमास" ही लिखा गया है। यही नहीं, चण्डीगढ़ की उस (ता. १६-५-८२ वाली) क्षयमासविमर्श सभा में जो सं. २०३९ वि. की "व्रतोत्सवपर्वनिर्णयपत्रिका" श्रीशंकराचार्य पुरी जी के अनुयायियों द्वारा जनता में वितरित की गई[1], उसमें भी व्यवहितपूर्व असंक्रान्त आश्विन को स्पष्टतया अधिमास एवम् संसर्प लिखा हुआ है।

सारांश यह है—श्रीशंकराचार्य पुरी के ये पांचों आक्षेप/विवेचन कोई शास्त्रीय आधार रहीं रखते, इन सभी का पूरी तरह प्रतिवाद हो जाता है, जिससे उनके द्वारा समर्थित संसर्पाशुद्धिपक्ष की तथाकथित शास्त्रीयता भी निरस्त हो जाती है।

इसके अतिरिक्त श्रीशंकराचार्य पुरी जी ने अपने भाषण में अव्यवहित संसर्प का निम्नांकित उदाहरण दिया, जो सर्वथा ग़लत है—

मार्गशीर्ष अधिकमास के अनन्तर यदि पौष क्षय हो जाए तो मार्गशीर्ष मास अव्यवहित संसर्प कहलाएगा।

यह उदाहरण श्रीजगद्गुरु जी के मतानुसार भी गलत है। जगद्गुरु जी सं० २०३९ वि. में पौष क्षय मानते है, अर्थात् उनके मतानुसार द्विसंक्रान्तमास होने पर प्रथम (द्विसंक्रान्तमासान्तर्गत दो संक्रान्तियों में से प्रथम) संक्रान्ति से सम्बद्ध मास

---

१. इस "व्रतोत्सव-पर्व निर्णय पत्रिका" पर श्रीशंकराचार्य पुरी जी का चित्र भी मुद्रित है।

क्षयमास कहलाता है। इस नियम के अनुसार पौषमास क्षय तभी कहलाएगा जब कि उस मास में मकर और कुम्भ—ये दो संक्रान्तियां हों। मकर और कुम्भ दो संक्रान्तियों वाले द्विसंक्रान्त मास से अव्यवहितपूर्व असंक्रान्तमास मार्गशीर्ष कदापि नहीं हो सकता, अपितु वह पौष मास ही होगा। इस लिए श्री शंकराचार्य द्वारा उपन्यस्त अव्यवहितपूर्व संसर्प का उपर्युक्त उदाहरण सर्वथा अनुपपन्न है। इसी तरह जगद्गुरु जी ने "आश्विन अधिकमास के बाद कार्त्तिक क्षय हो जाए तो आश्विन अव्यवहितपूर्व संसर्प होगा" —यह भी इस सभा में कहा था, यह भी ऊपर किए गए प्रतिपादनानुसार सर्वथा ग़लत है।

इसके अलावा महाराजसंस्कृत कालेज जयपुर के दो सिद्धान्तज्योतिष के पारदृश्वा महाविद्वान् प्राध्यापक श्री राम-पाल जी ज्योतिषाचार्य एवं श्री कृष्णगोपाल जी 'व्रजेश' ज्योतिषाचार्य, मुरादाबाद के लब्धकीर्त्ति, अनेक विषयों के पारंगत विद्वान् श्री पं. हंसराज शर्मा 'सुमन' M.A.(संस्कृत,हिन्दी) व जोधपुर के महाविद्वान् पं. श्री भोजराज जी शास्त्री, ज्योतिष-मार्त्तण्ड श्री गिरिधरनारायण जोशी ज्योतिषाचार्य एवम् प्रो. श्री पं. मांगीलाल जी दवे M.A., शिमला के सर्वतन्त्रस्वतन्त्र आचार्य श्री दिवाकरदत्त जी, रुद्रपुर (नैनीताल) के युवा पंचाङ्गकार श्री भोलादत्त महतोलिया आदि महानुभावों के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने शास्त्रीय पक्ष (संसर्पशुद्धिपक्ष) के समर्थन में सैद्धान्तिक लेख लिख कर सभाएं आयोजित कर सं. २०३९ वि. के दशहरा-दीपावली आदि पर्वों की शास्त्रीय तिथियों का प्रचार किया।

व्यवहितपूर्व संसर्प को शुद्ध प्रमाणित करने वाला सं. १८७६ वि. (शकाब्द १७४४) का एक प्राचीन पंचांग

नेपाली सं. ८०१ (वि. सं. १७३८) में काशी, तिरहुत, राजपुर आदि में सर्वत्र दशहरा-दीपावलि पर्व व्यवहितपूर्व ससर्प शुक्लादि आश्विन में ही मनाए गए। उस समय क्षयपूर्ववर्त्ती असंक्रान्त आश्विन को अधिकमास न मान कर क्षयोत्तरवर्त्ती असंक्रान्त चैत्र को ही पंचाङ्गकारों ने अधिकमास के रूप में दिखाया था – यह तथ्य नेपाल की 'ऐतिहासिक घटनावली' में, जो कि नेपाल के राजज्योतिषी पं. श्री चन्द्रभान जोशी ज्योतिषाचार्य के पास सुरक्षित है, निर्दिष्ट है।

१६० वर्ष पूर्व वि. सं. १८७९ में कुछ पंचाङ्गकारों ने व्यवहितपूर्व आश्विन संसर्प को मलमास मान लिया, जिससे भारत तथा नेपाल में नवरात्र, विजयादशमी आदि पर्वों की तिथियों में स्थामभेद से मतभेद पैदा हुआ— यह घटना नेपाल के ही वीरपुस्तकालय में संगृहीत "वंशावली" में निर्दिष्ट है।

जैसा कि हम पृष्ठ १२४ पर बतला चुके है कि हमें शकाब्द १७४४ का आन्ध्र (तेलुगु) लिपि में ताड़पत्र पर लिखित एक

ऐसा पंचाङ्ग मिला है जिसमें व्यवहितपूर्व आश्विन संसर्प को शुद्ध मान कर उसी में नवरात्र, विजयादशमी आदि पर्व लिखे हुए हैं। यह पंचाङ्ग हमें कोप्पेरम् (जिला-प्रकाशम्) आन्ध्रप्रदेश के निवासी श्री के. आर. शास्त्री चिन्तालपाटी ज्योतिषाचार्य के ग्रन्थागार से उपलब्ध हुआ है। यह अमूल्य दुर्लभ पंचाङ्ग सौहार्दभाव से श्रीचिन्तालपाटी जी ने हमें दे दिया— एतदर्थं उनके हम हृदय से आभारी हैं।

आगे पृष्ठ १७१ व १७२ पर इस पंचाङ्ग के चार (आश्विन कृष्ण[1], संसर्प आश्विनशुक्ल, संसर्प कार्त्तिककृष्ण, कार्त्तिक शुक्ल) पक्षों वाले चार पृष्ठों के चित्र दिए जा रहे हैं।

क्योंकि पंचाङ्ग के ये पृष्ठ तेलुगु लिपि में हैं, अतः तेलुगु से अनभिज्ञ पाठकों के लिए हम यहां इन पृष्ठों के बारे में अपेक्षित विवरण दे रहे हैं—

पृष्ठ १७१ पर दिए गए दो चित्रों में बाईं ओर वाला चित्र आश्विनकृष्णपक्ष का और दाईं ओर वाला संसर्प आश्विनशुक्ल पक्ष का है। आश्विन कृष्ण १४ के आगे "कन्यायां रविः ५७ घ. ४२ प. और संसर्प आश्विन शुक्लपक्ष की पहिली पंक्ति में "नवरात्र प्रारम्भः" और दसवीं पंक्ति में "विजयादशमी" लिखा है।

पृष्ठ १७२ पर दिए गए दो चित्रों में से बाईं ओर वाला चित्र संसर्प कार्त्तिककृष्णपक्ष का और दाईं ओर वाला कार्त्तिक-शुक्लपक्ष का है। संसर्प कार्त्तिककृष्णपक्ष की अन्तिम पंक्ति में "दीपावलिः, पद्मकयोगः" लिखा है। कर्त्तिकशुक्लपक्ष वाले

१. पाठकों की सुविधा के लिए ये पक्षनाम कृष्णादिपद्धत्यनुसार यहां लिखे गए हैं, जबकि इस तेलुगु पंचाङ्ग में पक्ष शुक्लादिपद्धत्यनुसार लिखे हुए हैं।

पृष्ठ पर पहिली पंक्ति में "तुलायां नीचेऽर्कः २३ घ. ५४ प.' लिखा हुआ है।

हमारी इस पुस्तक के पृष्ठ छोटे होने के कारण इस प्राचीन पंचाङ्ग के पृष्ठों के ये चित्र काफी छोटे बनाने पड़े हैं, जिससे इन्हें पढ़ने में कठिनाई हो सकती है। इस प्राचीन पंचाङ्ग के मूल पृष्ठ ताडपत्र पर लिखे हुए हमारे पास सुरक्षित हैं। कोई देखना चाहें तो हमारे यहां [मार्त्तण्ड ज्योतिष कार्यालय, पो. कुराली (रोपड़) पंजाब में] आकर देख सकते हैं।

सं. २०३९ वि. में व्यवहित संसर्प आश्विन को शुद्ध मानने वाले पंचांग

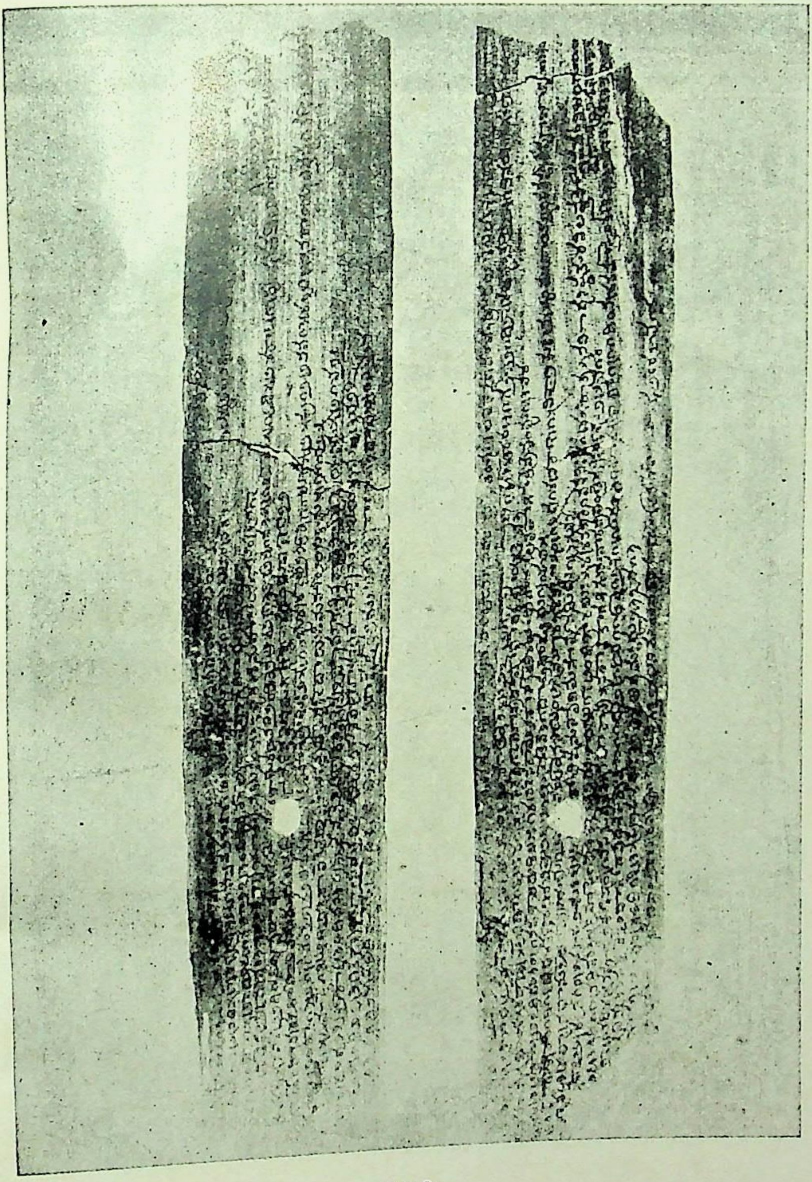
सं. २०३९ वि. में व्यवहित संसर्प आश्विन को शुद्ध (त्रिंशत्तिथ्यात्मक) मान कर उसीमें नवरात्र, विजयादशमी आदि मासिक व्रत-पर्व लगाने वाले भारत के विभिन्न प्रान्तीय पंचाङ्गों की संख्या १७५ से भी अधिक है। इन पंचाङ्गों की सूची हमने पृथक् से प्रकाशित भी की है, स्थानाभाव के कारण इसे इस पुस्तक में नहीं दिया जा सकता।

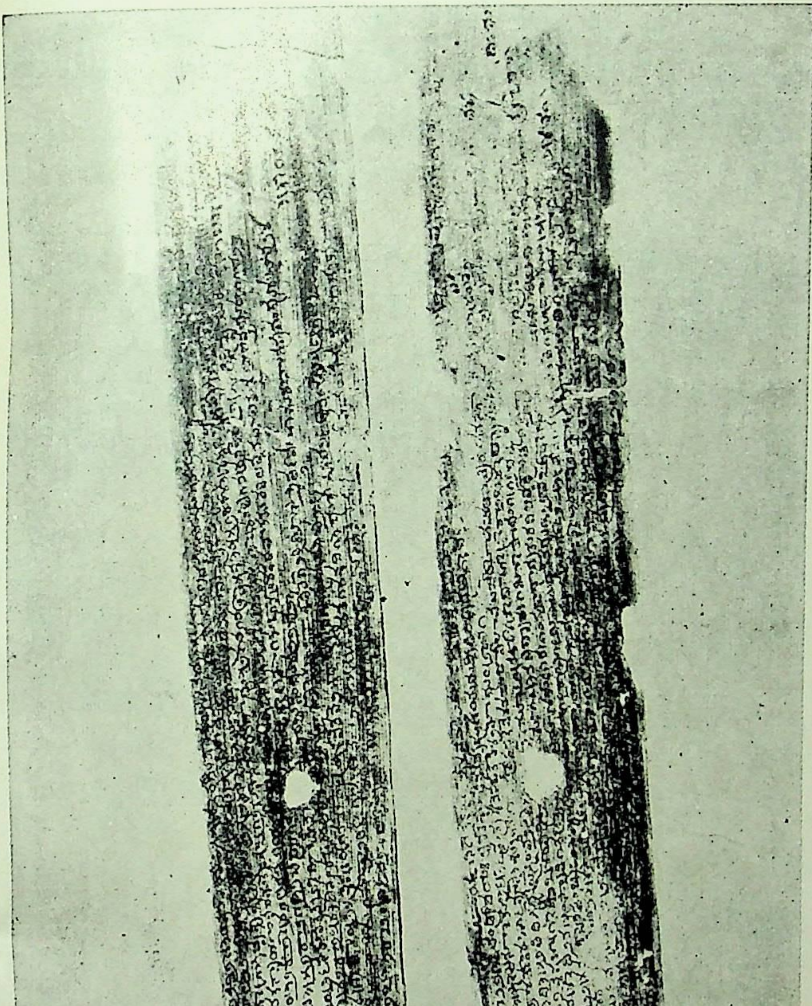
भारत में केवल दो ही संस्कृत विश्वविद्यालय हैं—वाराणसी और दरभङ्गा (बिहार) में। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इन दोनों संस्कृतविश्वविद्यालयों के पंचाङ्गविभागों द्वारा प्रकाशित किए गए सं. २०३९ वि. के पंचाङ्गों में आश्विन संसर्प को शुद्ध (त्रिंशत्तिथ्यात्मक) मान कर उसी में नवरात्र, विजयादशमी आदि मासिक व्रत-पर्व लिखे गए हैं। इन विश्वविद्यालयों के पंचाङ्ग-

विभागों ने सर्वभारतीय काशिराजन्यास वाराणसी, श्रीगीर्वाण-वाग्वर्धिनी सभा वाराणसी एवं शंकराचार्यपुरी जगद्गुरु श्री निरञ्जनदेव तीर्थ आदि धर्माचार्यों के उस निर्णय को अशास्त्रीय समझ कर अस्वीकार कर दिया जिसके अनुसार व्यवहितपूर्व संसर्प आश्विन को अधिमास घोषित किया गया था।

ध्यान रहे— इन संस्कृत विश्वविद्यालयों के ये दोनों पंचाङ्ग सर्वभारतीयकाशिराजन्यास वाराणसी आदि संस्थाओं के निर्णय की घोषणा के अनन्तर ही प्रकाशित हुए हैं।

॥ इतिशमस्तुतराम् ॥





शास्त्रीयपञ्चाङ्गमीमांसा

दृग्गणित पर किए गए आपेक्षों का प्रतिवाद करने वाला एक शोधात्मक प्रौढ़ प्रकाशन

(लेखक – प्रियव्रत शर्मा, शक्तिधर शर्मा)

भारतीय पंचाङ्ग आजकल संक्रमणकाल से गुजर रहा है। भारत के विभिन्न पंचाङ्ग विभिन्न सिद्धान्त-करणग्रन्थों से तैयार किए जाते हैं, जिससे उनके तिथ्यादिकाल तथा ग्रहस्थित्यादि में अनेकदा अक्षम्य अन्तर दिखाई देता है और इसके फलस्वरूप व्रत-पर्वों की तिथियों में अनैकमत्य पैदा हो जाता है। यद्यपि निरपवादरूप से सभी सिद्धान्त-करणग्रन्थकार एवं धर्मशास्त्रकार दृक्तुल्य (वेधसिद्ध) गणित को ही धर्मकृत्यादि के अनुष्ठान में प्रामाणिक मानते हैं, फिर भी प्राचीनता से व्यर्थ का मोह रखने वाले कुछ पंचाङ्गकार तथा वर्तमान कुछ धर्माधिकारी दृक्तुल्य गणित के विपक्ष में धर्मशास्त्र एवम् गणित के विरुद्ध तर्क उपस्थित करते रहते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में दृक्तुल्य विरोधी उन सभी तर्कों का अकाट्य प्रतिवाद, तथा दृक्तुल्यगणितसम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रौढ गणितात्मक उपपादन शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा किया गया है। यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा में हैं। व्रत-पर्वों की

तिथियों में मतभेद पैदा करने वाले कारणों के प्रतीकार पर भी लगभग ६० पृष्ठ हिन्दी भाषा में लिखे गए हैं।

सभी पंचाङ्गकारों एवं भारतीय सिद्धान्तज्योतिष के क्रमिक विकास पर अनुसन्धान करने वालों के लिए अनिवार्य रूप से पढ़ने योग्य है।

पुस्तक इन सात अध्यायों में विभक्त है— १. दृग्गणितैक्यापादनायैव सिद्धान्तकाराणां प्रवृत्तिः। २. दृक्तुल्या तिथिरेव शास्त्रसम्मता। ३. बीजं सोपपत्तिकाः संस्काराश्च। ४. अयनांशमाने वैमत्यम्। ५. दृग्गणितं धर्मशास्त्रं च। ६. विविधा विषयाः। ७. व्रत-पर्वों में वैमत्य का प्रतीकार।

पृष्ठ संख्या २६०, पांच रंग के ग्लेज़्ड आकर्षक टाइटल में बढ़िया कागज़ पर मुद्रित। मूल्य ५० रुपए।

प्राप्त करने का स्थान :-

मै. श्रीमार्त्तण्ड ज्योतिष कार्यालय

मु.पो. कुराली (रोपड़) पंजाब

आश्विन से पौष तक के दशहरा, दीपावलि आदि पर्वों की शास्त्र-सम्मत एवं युक्तियुक्त तारीखें

(वि. सं. २०३९)

व्रतपर्व	तारीख	व्रतपर्व	तारीख
शारद नवरात्र प्रा.	१८सितं.'८२	भाई दूज (य.द्वि.)	१८अक्तू.'८२
सरस्वती आवाहन	२५ ,,	श्रीविश्वकर्मा पूजा	१८ ,,
श्री दुर्गाष्टमी	२५ ,,	गोपाष्टमी	२५ ,,
महानवमी	२६ ,,	अक्षय नवमी	२६ ,,
दशहरा	२७ ,,	भीष्म पंचक प्रा.	२८ ,,
सरस्वती विसर्जन	२८ ,,	वैकुण्ठ चतुर्दशी (पूर्व अरुणोदय में)	३१ ,,
शरत्पूर्णिमा	२अक्तू.'८२	कार्तिकस्नान समाप्त	१ नवं.'८२
कोजागरी व्र.	२ ,,	भीष्मपंचक समाप्त	१ ,,
श्रीवाल्मीकि जयन्ती	३ ,,	श्रीमद्भैरवाष्टमी	८ ,,
कार्तिकस्नान प्रा.	३ ,,	स्कन्दषष्ठी	२१ ,,
करक चतुर्थी	६ ,,	चम्पाषष्ठी	२२ ,,
अहोई अष्टमी (पं.)	९ ,,	मित्रसप्तमी	२३ ,,
गोवत्स द्वादशी	१३ ,,	श्रीगीताजयन्ती	२७ ,,
धनत्रयोदशी	१४ ,,	श्रीदत्तजयन्ती	३० ,,
नरक चतुर्दशी	१५ ,,	खण्डग्रास सूर्य ग्रहण	१५दिसं.'८२
रूप चतुर्दशी	१५ ,,	जन्म गु गोबिन्दसिंहजी	२२ ,,
श्रीहनुमान् जयन्ती	१५ ,,	माघस्नान प्रारम्भ	३० ,,
दीपावलि	१६ ,,	संकट चतुर्थी	२ जन.'८३
अन्नकूट	१७ ,,	लोहड़ी (पंजाब)	१३ ,,
ुजा	१७ ,,	मौनी अमावस	१४ ,,
ा	१७ ,,		